"हम तो यही कर सकते हैं . . . कि इन कहानियों को दोहराते जाएँ। कुछ लोग सुनेंगे ही नहीं, या फिर सुनकर हँसेंगे, इन्हें झूठे कहेंगे। लेकिन एक दिन शायद सभी को मानने को मजबूर होना ही पड़ेगा कि हमारी इस अनोखी दुनिया में हम सभी की कोई न कोई जगह ज़रूर है।"

मगरमच्छ बाकी रेंगने वाले जन्तुओं को जंगल से भगा देते हैं, इसलिए कि उन्हीं को सारा खाना-पानी और जगह मिल सके। लेकिन इसका नतीजा यह होता है कि जंगल अचानक एक अजीब सी जगह बन जाती है . . .

जब एक पगलाई भीड़ चाल पर हमला करती है, आदित्य का सबसे अच्छा दोस्त, खलील, बेघर हो जाता है। आदित्य को अपने मित्र के लिए प्रार्थना करनी है लेकिन किस से प्रार्थना करे – अपने गणपति से या खलील के अल्लाह से?

एक गुस्सैल पुलिस 'बर्डमैन ऑफ़ इन्डिया', सालिम अली, और उनके जवान दोस्तों को जेल में डालना चाहता है। लेकिन सालिम मामूँ और बच्चे आखिर समझ ही जाते हैं कि सारी गड़बड़ सिर्फ़ अलग-अलग नामों की है . . .

ये दस कहानियाँ साफ़, धीर नज़रों से उस भारत को देखते हैं जिसमें हमारे बच्चे रहते हैं। और जहाँ शंका और विभाजन का उन्माद ज़ोरों से फैलता हुआ दिखता है, तो साथ-साथ आशा की किरणें भी मिलती हैं।

यह कहानी-संग्रह रचा गया एक विचार-गोष्ठी के अन्तर्गत जो विज्ञान, संस्कृति और शिक्षा केन्द्र द्वारा सितम्बर १९९३ में नई दिल्ली में आयोजित की गई थी। सम्पादक गीता हरिहरन और शमा फ़तेहअली जाने-माने लेखक हैं जिन्होंने इस गोष्ठी में भाग लिया था।

ISBN 81-86895-82-5
Rs 30.00

Tulika

साँरी, बेस्ट फ़्रेन्ड!

सम्पादक **गीता हरिहरन, शमा फ़तेहअली**

चित्र **रंजन दे**

सॉरी, बेस्ट फ़्रेंड!

सम्पादक
गीता हरिहरन और शमा फ़तेहअली
चित्र रंजन दे

Tulika

Sorry, Best Friend! (Hindi)
ISBN 81-86895-82-5

© Githa Hariharan and Shama Futehally for The Centre for Science, Culture and Education, New Delhi *(text and translation)*
© Tulika Publishers *(illustrations)*
First published in India, 2002
First published in English, 1997; first reprint 1999; second reprint 2001

Acknowledgements
The editors would like to thank all the translators, as also Hemangini Ranade and C. D. Tiwari for their assistance.
Poile Sengupta's story 'The Lights Changed' was first published in *Target*, May 1988. Swapna Dutta's story 'The Song of Songs' was first published in *Children's World*, September 1985.
The Centre for Science, Education and Culture, New Delhi, acknowledges the support of Tata Services Ltd in holding a workshop on secular books for children in September 1993.

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or used in any form or by any means – graphic, electronic or mechanical – without the prior written permission of the publisher.

published by
Tulika Publishers
13 Prithvi Avenue, Abhiramapuram, Chennai 600 018, India
email kaka@tulikabooks.com & tulbooks@md4.vsnl.net.in
website www.tulikabooks.com

printed and bound at
the ind-com press
393 Velachery Main Road, Vijaynagar, Velachery, Chennai 600 042, India

distributed by
Goodbooks Marketing Pvt. Ltd
76 Fourth Street, Abhiramapuram, Chennai, 600 018, India
email goodbuks@vsnl.com *website* www.goodbooksindia.com

हम सब के कुछ ऐसे दोस्त, पहचान वाले या पड़ोसी हैं जो किसी-न-किसी बात में हम से अलग हैं। हो सकता है वे हम से ज़रा अलग दिखते हों, या उनकी भाषा हमारी समझ में न आए, या हम दोनों के खाने में फ़र्क हो। कुछ लोग कोई दूसरे भगवान से प्रार्थना करते होंगे, और कुछ हैं जो प्रार्थना करते ही नहीं। कभी-कभी ऐसा लगता है कि हम सब छोटे-छोटे हिस्से हैं जो मिल कर एक बड़ी सी तस्वीर बनाते हैं, जिसका नाम है भारत।

लेकिन इस बात को अगर हम जब-तब भूल जाएँ तो क्या होता है? जैसे कभी एक न थे, टूट-फूट शुरू हो जाती है। लोगों को चोट पहुँचती है, उनके घर नष्ट हो जाते हैं, विश्वास हमेशा के लिए खो जाता है। ऐसा हुआ था दिल्ली में सन् १९८४ में, अयोध्या में १९९२ में। फिर, सन् २००२ में, गोध्रा में और उसके पश्चात् गुजरात की अन्य जगहों पर। हर साल हम सुनते हैं कि दलित या हरिजन बस्तियों पर फिर कुछ ज़्यादती हुई है। हमें अहद करना है कि ऐसा फिर कभी नहीं होगा।

इस किताब में जो कहानियाँ हैं, कुछ हँसाती हैं, कुछ रुलाती हैं, और कुछ तो पूरी तरह काल्पनिक हैं। लेकिन ये सारी कहानियाँ हमें याद दिलाती हैं कि "हमारी इस अनोखी दुनिया में हम सभी की कोई न कोई जगह ज़रूर है।"

सम्पादक

सूची

कछुए कहाँ गए? 7
ज़ाई विटेकर

बत्ती बदल गई 16
पोइली सेनगुप्ता

सुरंग 20
शमा फ़तेहअली

आज के शेर बनाने वाले 27
गीता हरिहरन

जीतने वाली टीम 33
सावित्री नारायणन

संगीत सम्राट 42
स्वपना दत्ता

सॉरी, बेस्ट फ़्रेन्ड! 45
हेमांगिनी रानाडे

ऋषभ का राम 54
गीता हरिहरन

गुड़िया 59
सावन दत्ता

मूर्ख और महामूर्ख 65
शमा फ़तेहअली

कछुए कहाँ गए?

ज़ाई विटेकर

तुम्हें शायद इस कहानी पर विश्वास न हो, पर मैं जानता हूँ कि यह सच्ची है — क्योंकि मैंने नागनगरी देखी है, जहाँ साँप रहते हैं।

नागनगरी ऐसे घने, अंधेरे जंगल के बीच में है कि तुम देखोगे तो सोचोगे कि लोग वहाँ तक पहुँचते कैसे हैं। जंगल के गिरे हुए पेड़ और उनकी डालियाँ रास्ते को रोक देती हैं। कँटीली झाड़ियाँ और बेलें हाथों और पैरों को खरोंच-खरोंच कर आगे बढ़ना दूभर कर देती हैं। कुछ देर चलकर ही मन करता है कि वापस लौट जाएँ। इस जंगल में छिपकलियों, साँपों और चीलों को ही मज़ा करने दो। हमारा यहाँ क्या काम।

नागनगरी इसी जंगल के एक छोर पर, पहाड़ी के किनारे पर बसा हुआ एक छोटा सा गाँव है। पहाड़ी की ढलान पर फैला हुआ घना जंगल ऐसा लगता है जैसे दूर-दूर तक हरी मखमल का गलीचा बिछा हुआ हो। गाँव के ऊपर आसमान में चीलें उड़ती रहती हैं। उनकी गोल-गोल आँखें बड़ी सतर्कता से ज़मीन पर चूहे और साँपों को खोजती हैं।

कभी-कभी जंगल किसी बड़े पेड़ के टूटने की आवाज़ से गूँज उठता है — जैसे किसी दैत्य ने लात मारकर पेड़ को गिरा दिया हो। शायद कोई हाथी हो या फिर जंगली भैंसा। लेकिन नागनगरी में इन आवाजों को सुनकर किसी को डर नहीं लगता।

गाँव में सभी तरह के लोग रहते हैं, कुछ काले तो कुछ गोरे, कुछ लम्बे तो कुछ छोटे। इन लोगों की अपनी-अपनी भाषाएँ हैं। कुछ माँसाहारी

हैं तो कुछ शाकाहारी। कुछ लोग जंगल के एक कोने में बने मंदिर में पूजा करते हैं तो कुछ दूर बनी मस्जिद में नमाज़ पढ़ते हैं। कुछ लोग एक ईश्वर को मानते हैं तो कुछ लोग बहुत से देवी-देवताओं के उपासक हैं। लेकिन सब मिलजुल कर बहुत खुश रहते हैं।

मेरा नाम है प्रेम, और मैं नागनगरी से कई सौ मील दूर रहता हूँ। मैंने उस गाँव के बारे में सुना था लेकिन वहाँ कभी जा नहीं पाया, क्योंकि रेलगाड़ी, बस और बैलगाड़ी का लम्बा सफ़र तय करना होता था। फिर पिछले साल, एक भयानक घटना घटी। मेरे अपने गाँव के लोग गोया पगला गए। दूर, बहुत दूर एक जगह पर, जो देखी तक नहीं थी, एक मंदिर या कि मस्जिद जला दिया गया था। बस, हमारे गाँव के लोग पागल हो गए। एक-दूसरे के साथ लड़ाई-झगड़ा शुरू, और कुछ लोगों को तो रात के बीचो-बीच जान बचाकर भागना पड़ा।

एक दिन सुबह के तीन बजे मैं घर में आधी नींद में दंगा-फ़साद की आवाज़ें सुन रहा था, तभी देखा कि आग लग गई है। उस आग में कई झोंपड़ियाँ नष्ट हो गईं। उनमें से एक मेरी भी झोंपड़ी थी।

हड़बड़ाहट में कुछ कपड़े बटोर, कुछ खुले पैसे रख, और अपनी छोटी सी गणेशजी की मूर्ती ले कर मैं दौड़ा। सारा दिन और सारी रात दौड़ता रहा। तब तक रुका नहीं, जब तक मेरे पाँव थक कर चूर न हो गए। मैं एक रेलगाड़ी पर कूद पड़ा, फिर बस पर। बिना टिकट। कोई बात नहीं! सभी लोग उसी तरह उन्मत्त से भाग रहे थे।

आखिर मैं नागनगरी पहूँचा, और मैंने वहाँ देखा गाँव के कुछ लोग कुएँ के पास खड़े हैं। सीधा उन्हीं के पास पहुँचा, लेकिन कुछ कह पाता उससे पहले बेहोश हो गया।

जब मैंने आँख खोली, तो देखा कि एक बुज़ुर्ग, जिनके बिल्कुल सफ़ेद बाल, लम्बी सफ़ेद दाढ़ी, और चमकती काली आँखें थीं, पास बैठ

कर मुझे संभाले हैं। कुछ दिनों तक उन्होंने मेरी देख-भाल की, अपने हाथों से खाना खिलाते और मेरे लिए झरने से मीठा ठंडा पानी लाते। मेरे पैरों की मालिश तक करते जिससे मेरा दर्द दूर हुआ। मुझे मिलने के लिए उनके दोस्तों और पड़ोसियों की कतार लगी रहती!

एक दिन मैंने उनसे कहा, "बाबा, ऐसे लोग तो मैंने कभी देखे ही नहीं! मेरे गाँव में तो अगर कोई हम से अलग भगवान को पूजता है, तो बस वह बात झगड़े का बहाना बन जाती है। लेकिन यहाँ तो . . . यह जगह अद्‌भुत जान पड़ती है!"

"प्रेम," बाबा ने जवाब दिया, "मैं तुम्हें नागनगरी की कहानी सुनाता हूँ। इस कहानी को तुम फिर अपने गाँव में जा कर सुनाना। शायद तुम्हारी चोटों की घाव इससे भर जाएँ। और सारे दुःख दूर हो जाएँ।"

"बाबा," मैंने कहा, "यह तो हो ही नहीं सकता। मैंने अपने गाँव में जो देखा है वह बेहद कटु और लज्जाजनक है। मैं वहाँ हरगिज़ नहीं लौटूँगा।"

"मगर इसलिए तो वहाँ लौटना और भी ज़रूरी है," बाबा ने बहुत ही कोमल स्वर में कहा। मैं चुप रहा। मैं नहीं चाहता था उनसे बहस करना, बल्कि मुझे कहानी सुननी थी।

"बहुत पहले की बात है," बाबा बोले। "उस ज़माने की, जब न तो स्कूल थे और न अध्यापक। बच्चे अपने माँ-बाप के साथ गुफ़ाओं में रहते थे और कन्द, मूल, फल इकट्ठा करने में माँ-बाप का हाथ बँटाते थे।"

"उस समय नागनगरी के जंगल में शेर, हाथी और तेंदुओं का कोई नामोनिशान नहीं था। पूरे जंगल में केवल रेंगने वाले जीव थे, तरह-तरह के आकार के। अब तुम तो जानते होगे कि कौन-कौन से जीव रेंगने वाले हैं। साँप, मगरमच्छ, कछुए, छिपकलियाँ — ये सभी ऐसे ही जीव हैं। और तुम्हें यह भी मालूम होगा कि इन जीवों के शरीर पर शल्कें होते हैं और ये

अंडे देते हैं। मेरा मतलब है कि ज़्यादातर रेंगने वाले जीव अंडे देते हैं। प्रकृति में हर नियम का कोई न कोई अपवाद अवश्य मिलता है। जैसे कि हम यह नहीं कह सकते कि सभी उड़ने वाले जीव पक्षी हैं। क्योंकि कुछ जीव, जैसे कि . . . खैर, छोड़ो इस बात को।

''नागनगरी के जीव महीने में एक बार एक सभा का आयोजन करते थे। सभी जीव सभा में अवश्य आते थे — प्यारे, खुबसूरत साँप, धीमे चलने वाले, विचारवान•कछुए, चपल, चालाक छिपकलियाँ, खोए-खोए से मगरमच्छ, कुछ झुंझलाए हुए क्योंकि उन्हें पानी से बाहर आना पड़ा था।

''इन मासिक सभाओं का अध्यक्ष था मकर। वह इस जंगल का सबसे बड़ा मगरमच्छ था। लोग कहते हैं कि वह २५ फुट लम्बा था। खैर, उसकी असली लम्बाई का तो पता नहीं पर जंगल में उसकी शक्ति का लोहा सभी मानते थे। जब कोई बहुत शक्तिशाली होता है तो सभी को उसकी हाँ में हाँ मिलाना तो पड़ता ही है।

''एक दिन एक अजीब घटना हुई। सभा के एक हफ़्ते पहले की बात है। मकर ने सभी कछुओं को पत्र द्वारा सूचित किया कि वे सभा में न आएँ। सबसे बड़ा कछुआ था बूढ़ा आहिस्ता, जिसकी पीठ पर काली, पीली आकर्षक तस्वीरें सी बनी हुई थीं। पत्र को पाकर वह बहुत नाराज़ हुआ।

'' 'इसका क्या मतलब है?' वह चिल्लाया। 'हमारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों?' लेकिन किसी भी कछुए की सभा में जाने की हिम्मत नहीं हुई — वे खुद थोड़े से थे, बाकी जीवों की तादाद उनसे कहीं ज़्यादा।

''सभा शुरू होने से पहले, मकर ने नदी किनारे वाले पेड़ के लाल फूलों से अपने दाँत चमकाए। सब उसकी सभा में आने का इन्तज़ार कर रहे थे।

'' 'भाइयों और बहनों,' मकर ने कहा। सभी जीव, यहाँ तक कि चपल किंग कोबरा भी, चुप हो गए। मकर ने आगे कहा, 'मैंने निश्चय

किया है कि हमें कछुओं की ज़रूरत नहीं है। मैंने उनसे कह दिया है कि वे आज सभा में न आएँ। भाइयों और बहनों, मुझे बताओगे कि हम उन्हें पसन्द क्यों नहीं करते हैं?'

''सभी जीव इधर-उधर देखने लगे। सबको अजीब सा लग रहा था। साँप बेचैनी से फुफकारने लगे, छिपकलियाँ अपनी पूँछों को पटकने लगीं, मगरमच्छों के जबड़े फैलने लगे।

'' 'लेकिन . . .' एक छोटी सी छिपकली बोली।

'' 'कुछ लेकिन-वेकिन नहीं!' मकर चिल्लाया। सभी चुप थे।

'' 'मैं सोचता हूँ . . .' एक छोटा सा मगरमच्छ का बच्चा बोला।

'' 'कुछ सोचना नहीं!' मकर इतनी ज़ोर से चिल्लाया कि ऊपर पेड़ से फल टूट कर गिरने लगे। इसके बाद सब की हिम्मत पस्त हो गई। कोई कुछ न बोला।

''मकर ने गला साफ़ किया, अपने दाँत दिखाए और बोला, 'मैं तुम्हें बताता हूँ कि हमें कछुए अच्छे क्यों नहीं लगते हैं। वे कितने धीरे चलते हैं! बेवकूफ़ हैं! वे अपने घर तक को अपनी पीठ पर लेकर चलते हैं — है न बेवकूफ़ी वाली बात! अब इन छिपकलियों से पूछो। ये पेड़ों पर रहती हैं। तो क्या ये पेड़ों को अपनी पीठ पर लाद कर चलेंगी? बताओ!'

''डरी हुई छिपकलियों ने सहमी सी स्वर में कहा, 'नहीं, पर . . .'

'' 'चुप! मेरी बात सुनो। मैंने कछुओं से कह दिया है कि उन्हें नागनगरी छोड़कर जाना पड़ेगा। जब वे चले जाएँगे तो हमारे पास पहले से ज़्यादा खाना, पानी और जगह होगी। मैं तो चाहता था कि वे कल ही नागनगरी छोड़ जाते, लेकिन उनके धीमेपन को देखते हुए मैंने उन्हें एक हफ़्ते का समय दे दिया है। अगले मंगलवार तक इस जंगल में एक भी कछुआ दिखाई न देगा।'

''और मंगलवार तक सभी कछुए वहाँ से चले गए। शुरू में तो बाकी

जानवर कुछ उदास हुए पर फिर उन्हें लगा कि मकर ने ठीक ही कहा था। अब उनके पास ज़्यादा खाना, ज़्यादा पानी और ज़्यादा जगह थी।

''लेकिन जल्दी ही जंगल की हवा में कुछ दुर्गन्ध सी आने लगी। यह सड़ी हुई चीज़ों से आ रही थी। ज़मीन पर गिरे फल सड़ रहे थे, नदियों में मरे हुए जानवर सड़ कर बदबू फैला रहे थे। कछुए इन्हीं चीज़ों को खाते थे। मकर भी अपनी नाक अपने बड़े पंजे से दबाकर बाहर निकलते थे।

''एक महीना बीत गया . . . और फिर पहले जैसी घटना घटी। इस बार साँपों को मकर का पत्र मिला। उन्हें जंगल छोड़ कर जाना था, और क्योंकि वे फुर्ती से चलते हैं उन्हें केवल एक दिन का ही समय दिया गया।

''नागराज, जो कि साँपों का सरदार था, उसने प्रार्थना की कि उन्हें कुछ और समय दिया जाए। लेकिन मकर ने एक न सुनी। सभा में उसने सबको — छिपकलियों और मगरमच्छों को — ज़ोर से गरजकर चुप करा दिया। उसने कहा, 'साँप लम्बे-लम्बे अजीब किस्म के जीव हैं और वे बेकार की आवाज़ निकालते रहते हैं। हमें ऐसे जीवों की ज़रूरत नहीं है।' मकर का विरोध करने की हिम्मत किसी में नहीं थी, और साँप चले गए।

''कुछ समय तक तो जंगल के जानवरों को साँपों का चले जाना बड़ा अच्छा लगा क्योंकि उन्हें साँपों से डर तो लगता ही था। क्या पता किस साँप को कब गुस्सा आ जाए और वह अपना ज़हर किसी पर उगल दे! और फिर कोई भी ज़रा से ज़हर से मर सकता था।

''कुछ हफ़्ते बीत गए। जानवर बड़े थके-थके, परेशान से दिखने लगे। चूहे! अब जब उनको खाने के लिए साँप जंगल में नहीं थे तो चूहों की बन आई। चारों ओर चूहे ही चूहे दिखने लगे। पेड़ों पर, घास पर, झाड़ियों में, ज़मीन पर, सभी जगह चूहों का बोलबाला हो गया। वे छिपकलियों को और मगरमच्छ के अंडों को खा गए। जब अंडे ही न बचे तो बच्चे कहाँ से होंगे? मकर के अपने अंडे भी चूहों ने खा डाले।

''अब मकर को एक नई बात सूझी। उसने मगरमच्छों की सभा बुलाई और कहा, 'क्या यह अच्छा न होगा कि इस पूरे जंगल को हम केवल अपने लिए रख लें? सिर्फ़ मगरमच्छ इसमें रहें। इन छिपकलियों को देखो! एक तो इनका स्वभाव बड़ा अजीब है, दूसरा इनमें से कुछ अपना रंग बदलती रहती हैं। हम इन पर कैसे विश्वास कर सकते हैं? ये पल में हरी और पल में लाल हो जाती हैं! अब हम इन्हें भी निकाल दें!'

''सभी मगरमच्छ मकर से डरते थे। वे चुपचाप मकर की बात मान लेते थे, इसलिए सबने तालियाँ बजाकर मकर की बात का स्वागत किया। मकर बहुत खुश हुआ। छिपकलियाँ जंगल से बाहर चलीं गईं।

''अब नागनगरी में मगरमच्छों की ज़िन्दगी में मज़ा ही मज़ा होना चाहिए था, लेकिन ऐसा न हुआ। वहाँ कुछ अजीबोगरीब घटनाएँ घटने लगीं – जैसे कोई पागल जंगल में आकर सब कुछ उलटा-पुलटा कर रहा हो। चूहों की हिम्मत दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी, यहाँ तक कि वे मगरमच्छों के भी पीठों पर कबड्डी खेलते रहते। मेंढकों की संख्या तेज़ी से बढ़ने लगी क्योंकि उन्हें खाने के लिए केवल मगरमच्छ ही बचे थे। वे इतने बड़े होते गए कि वे खुद मगरमच्छों के छोटे बच्चों को खाने लगे। और कीड़े मकौड़े! छिपकलियों के न रहने से वे अरबों की संख्या में बढ़ने लगे। सभी बहुत परेशान थे।

''मगरमच्छों का समय बड़े कष्ट से बीत रहा था। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि उनके सुखी घर की बरबादी का कारण क्या था। परन्तु एक दिन सभा में एक छोटे से मगरमच्छ ने सहमी सी आवाज़ में कहा, 'हम जानते हैं कि हमारे जंगल में से खुशहाली क्यों चली गई है। है ना?'

''सभी मगरमच्छ चुप थे। उन्होंने डरते-डरते मकर की ओर देखा, लेकिन आज मकर भी कुछ कमज़ोर दिखाई पड़ा।

''मकर ने अपनी पूँछ पर चल रहे चूहे को हटाते हुए उस छोटे से

मगरमच्छ से पूछा, 'हाँ, हाँ, छोटू, बताओ, क्या कारण है?' 'जंगल में परेशानियों का सिलसिला कछुओं के . . .'

मकर ने बीच में ही रोक कर कहा, 'ठीक है, ठीक है, ज़्यादा बोलने की जरूरत नहीं है।' मकर नहीं चाहता था कि लोग उसे गलत ठहराएँ। लेकिन अब तक सभी मगरमच्छ जान गए थे कि मकर की ताकत और शक्ति का कोई महत्त्व नहीं था और न ही उसकी बात हमेशा सही होती थी। उन्होंने तुरंत कछुओं, साँपों और छिपकलियों को नागनगरी में लौट आने का संदेश भिजवाया। नागनगरी में वह एक उत्सव का दिन था जब सभी जीव वापस लौट आए। सब अपने-अपने परिवारों के साथ, छोटे-छोटे बच्चों को पीठ पर लादकर या उन्हें धीरे-धीरे चलाकर अपने घरों में ले आए।

''दो महीनों में ही जंगल पहले जैसा हो गया। चूहे भाग गए, कीड़े-मकौड़े लापता हो गए और बदबू समाप्त हो गई। एक बार फिर ज़िन्दगी सामान्य रूप से चलने लगी।''

''क्यों भई, प्रेम,'' बाबा ने कहा, ''सो गए हो क्या? मेरी कहानी सुनते-सुनते नींद आ गई?''

मैंने सिर हिलाया। ''जी नहीं, बाबा। मैं सोच में था। यही कि मुझे लौटकर मेरे गाँव के लोगों को यह कहानी सुनानी चाहिए। लेकिन अगर कोई माने नहीं तो?''

''हम तो यही कर सकते हैं, बेटा, कि इन कहानियों को दोहराते जाएँ। कुछ लोग सुनेंगे ही नहीं, या फिर सुनकर हँसेंगे, इन्हें झूठे कहेंगे। लेकिन एक दिन शायद सभी को मानने को मजबूर होना ही पड़ेगा कि हमारी इस अनोखी दुनिया में हम सभी का कोई न कोई जगह ज़रूर है।''

अनुवाद बिमला गौड़

बत्ती बदल गई

पोइली सेनगुप्ता

मैं तो बस मज़ाक कर रहा था। जनपथ के चौराहे पर अखबार बेचने वाले उस फटेहाल लड़के के साथ ज़रा सा मज़ाक। जब भी मैं अपनी साइकिल पर वहाँ से गुज़रता, वह हाथ में अंग्रेज़ी का अखबार थामे मेरे पीछे दौड़ता। और ज़ोर-ज़ोर से – कुछ हिन्दी कुछ अंग्रेज़ी में – चीख कर शाम की ताज़ा खबरों की सुर्खियाँ सुनाता।

इस बार मैं फ़ुटपाथ पर रुका और उससे हिन्दी का अखबार माँगा। उसका मुँह खुला का खुला रह गया। "मतलब . . . मतलब आप हिन्दी जानते हैं?" उसने पूछा। "हाँ हाँ, क्यों?" अखबार के पैसे चुकाते हुए मैंने कहा। "क्यों भाई, तुमने क्या सोचा था?"

कुछ ठहर कर उसने जवाब दिया, "मगर . . . मगर आप तो बिल्कुल अंग्रेज़ लगते हैं।" फिर आगे बोला, "मतलब आप हिन्दी पढ़ भी सकते हैं?"

"हाँ हाँ, बिल्कुल पढ़ सकता हूँ," इस बार मैंने कुछ बेसब्री से कहा। "मैं हिन्दी बोल सकता हूँ, पढ़ सकता हूँ और लिख भी सकता हूँ। स्कूल में हिन्दी मेरा एक सब्जेक्ट भी है।"

"सब्जेक्ट क्या?" उसने पूछा। जो कभी विद्यालय गया ही न हो उसे मैं कैसे समझाता कि सब्जेक्ट क्या होता है। फिर भी मैंने कोशिश की। "सब्जेक्ट होता है . . .।" मगर लाल बत्ती हरी हो चुकी थी और मेरे पीछे भोपूं की आवाज़ें बढ़ती जा रही थीं। मैं ट्रैफ़िक के साथ आगे बह गया।

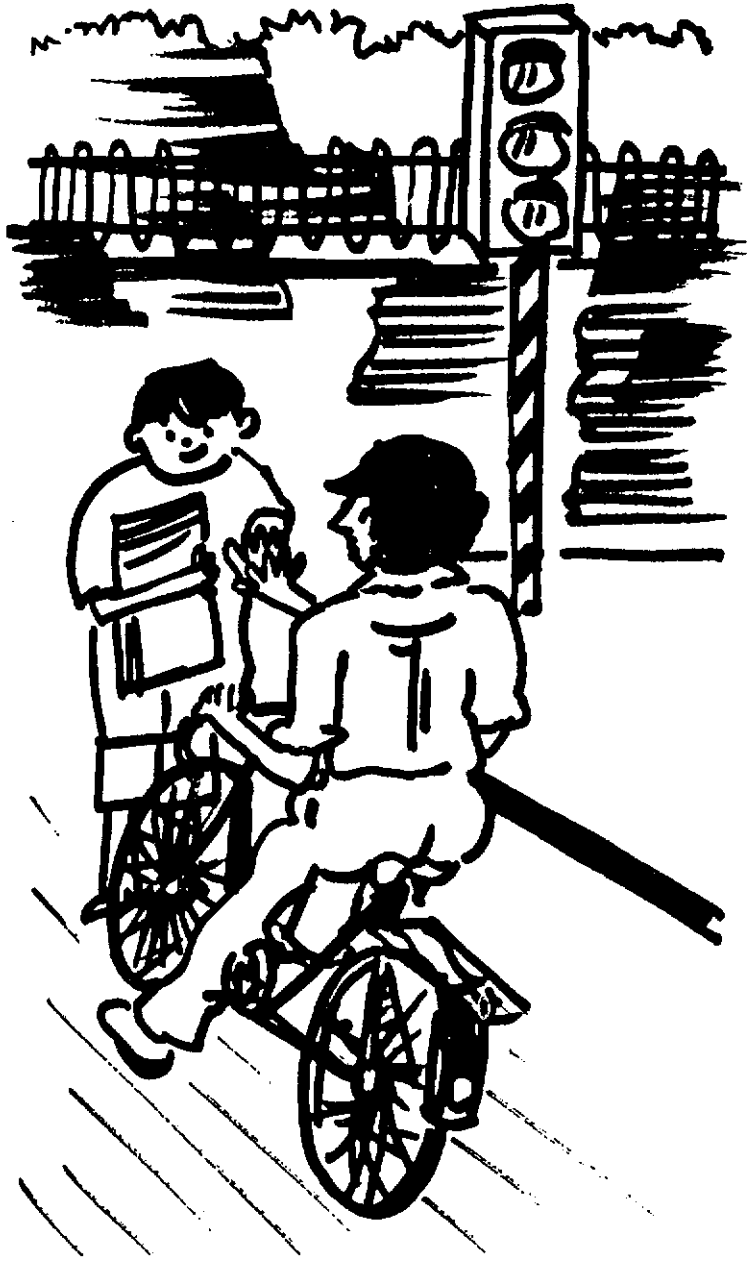

अगले दिन वह फिर वहाँ था। मुझे देखकर मुस्कुराया और हिन्दी का अखबार बढ़ाते हुए उसने कहा, "आपका अखबार। अब बताइए ये सब्जेक्ट क्या चीज़ है?" अंग्रेज़ी का यह शब्द उसकी ज़बान पर कुछ अजीब सा लगा।

"अरे, जो-जो पढ़ते हैं वही सब्जेक्ट होता है," मैंने कहा। लाल बत्ती जारी थी सो पूछा, "क्या तुम कभी स्कूल नहीं गए?"

"कभी नहीं," उसने जवाब दिया। मेरी साइकिल की गद्दी की ओर इशारा करते हुए उसने गर्व से बताया, "जब मैं इतना सा था तभी से काम कर रहा हूँ।" फिर आगे बोला, "पहले मेरे साथ मेरी माँ आया करती थी। मगर अब तो मैं अकेले ही ये काम कर सकता हूँ।"

"तुम्हारी माँ अब कहाँ है?" मैंने पूछा। पर तभी बत्ती बदल गई और मुझे आगे बढ़ना पड़ा। कहीं पीछे से उसकी ज़ोर सी आवाज़ सुनाई दी, "वह मेरठ में है . . . मेरे . . .।" बाकी शब्द शोर में डूब गए।

"मेरा नाम समीर है," अगले दिन उसने कहा। फिर शरमाते हुए मुझसे पूछा, "आपका नाम क्या है?"

कैसी गज़ब की बात! मेरी साइकिल ढगमगा गई। मैंने कहा, "मेरा नाम भी समीर है।"

"क्या?" उसकी आँखों में एक चमक सी कौंध गई।

"हाँ," मैं मुस्कुरा कर बोला। "जानते हो? यह हनुमान का दूसरा नाम है।"

"तो अब आप हुए समीर नम्बर एक और मैं हुआ समीर नम्बर दो," उसने बड़े जोश से कहा।

"ऐसा ही सही।" मैंने उसकी ओर अपना हाथ बढ़ा दिया। "फिर मिलाओ हाथ समीर नम्बर दो।"

उसने इतना उत्साह से हाथ मिलाया कि चलते हुए उसका प्यार की

गरमाहट को मैं काफ़ी दूर तक महसूस करता रहा।

अगले दिन उसके चेहरे पर मुझे वह रोज़ वाली मुस्कान नहीं मिली। "मेरठ में बहुत गड़बड़ है," उसने कहा, "वहाँ दंगों में बहुत से मुसलमान मारे जा रहे हैं।"

मैंने अखबार की सुर्खियों को देखा। मेरठ साम्प्रदायिक दंगों से दहक रहा था।

"मगर समीर . . ." मैं कुछ कहना चाहा।

"मैं मुस्लिम समीर हूँ," वह फिर बोला। "मेरे परिवार के सभी लोग मेरठ में हैं।" उसकी आँखों में पानी भर आया। मैंने उसका कंधा थामा तो भी वह नज़र नहीं उठाया।

अगले दिन वह चौराहे पर नहीं था। न ही उससे अगले दिन और न ही फिर कभी। और कोई भी अखबार — न अंग्रेज़ी न हिन्दी — मुझे यह बता पाया कि मेरा समीर नम्बर दो आखिर गया कहाँ।

अनुवाद मीरा कांत

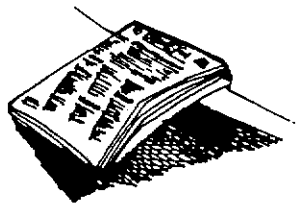

सुरंग

शमा फ़तेहअली

अंकुश ट्रेन की खिड़की से बाहर स्टेशन की हलचल देख रहा था। उसे कहीं और नहीं देखना था। मम्मी-पापा से बोलना भी नहीं था। बस! और रोना तो किसी हालत में नहीं।

मम्मी उसके पास सीट पर बैठी उससे बातें करने की कोशिश कर रही थीं – जैसे कभी-कभी वह खुद मम्मी को मनाने की कोशिश करता। ऐसे लग रहा था जैसे आज दोनों ने जगह बदल ली हो। और पापा कह रहे थे, "बैट चाहिए, अंकू? या फिर पानी की पिस्तौल?"

खिड़की के पास एक खिलौने वाला आ खड़ा हुआ। अंकुश को अचानक लगा जैसे वह रंगों के फव्वारे के बीच में बैठा हो। हर रंग का खिलौना उसके सामने उछल रहा था। उसने अपनी नज़र हटा ली।

"क्रिकेट सेट भी नहीं चाहिए?" पापा ने पूछा। "वहाँ पहुँच कर कितना खेल सकोगे। देखो ना अंकू, सेट के ऊपर सचिन का चित्र है!"

था भी सही। सचिन का बिल्कुल फर्स्ट-क्लास चित्र, लिफ़ाफ़े के ऊपर। कितना बड़ा सेट था। ऐसी भेंट तो मम्मी-पापा जन्मदिन पर ही देते हैं। बिलावजह कभी नहीं। (लेकिन आज तो सब चीज़ उल्टी-सुल्टी थी।)

अंकुश ने सिर हिलाकर मना किया। लेकिन खिलौने वाला तब तक उसे निकाल चुका था और अच्छा हुआ कि पापा ने ले भी लिया। बहुत सावधानी से उन्होंने सेट को सीट पर रखा, अंकुश की वॉटर-बॉटल के साथ।

कहीं एक घंटी बजी। मम्मी धक्क से उठ बैठीं। पापा परेशान दिखे। प्लेटफार्म पर सब लोग अचानक इधर-उधर दौड़ने लगे।

मम्मी ने अंकुश को बाहों में भींच लिया और कहने लगीं, "हरि सिंह, ध्यान रखना। शायद कभी इनको पानी चाहिऐ हो या कुछ और भी।"

"बेफ़िक्र रहिए, मेमसाब। बाबा तो मेरे अपने बच्चे जैसे हैं। आप बिल्कुल चिंता न करें।"

"और . . ." मम्मी की आवाज़ लड़खड़ाने लगी थी। "अगर ट्रेन सुरंग में से गुज़रे तो इनके पास ही बैठना। इन्हें बहुत डर लगता है।"

"शू-ऊ-ऊ-ऊ-ऊ!" चीख-सी एक सीटी बजी। मम्मी-पापा उसकी ओर इस तरह देख रहे थे जैसे दोनों सज़ा पाने को ठहरे हों। कितना अजीब था, यह जो उनके साथ जगहें बदल गई थीं।

पापा ने अंकुश को सीने से लगा लिया। अंकुश का मन कर रहा था कि वह गुस्से से मुँह फेर ले। लेकिन कुछ ऐसा हुआ कि गुस्सा दिखाने के बजाय वह उनको टा-टा करने लगा। पहले मम्मी को, फिर पापा को। जैसे-तैसे उसने अपने आँसुओं को रोके रखा।

और अब ट्रेन चली। फिर एक बड़ा सा खंभा बीच में आ गया, और मम्मी-पापा उसके बाद नहीं दिखे।

बस। अब और कोई नहीं था, केवल हरि सिंह। "बाबा, घबराना नहीं," उसने कहा। "जल्दी ही मम्मी का ऑपरेशन हो जाएगा, और हम लौट आएँगे। बाहर देखो न, कितना सुंदर है!"

हरि सिंह ने अपनी बड़ी-बड़ी खुरदरी उंगलियों से अंकुश का सर सहलाया, फिर जेब से बीड़ी निकालते हुए कहा, "अभी आता हूँ।"

बड़े से खाली डिब्बे में अंकुश अकेला था। कभी पहले वह इस तरह अकेला नहीं रहा था। लम्बी-चौड़ी हरी सीट पर कुछ नहीं था सिवाय उसके लंच-बॉक्स के। एक कोने में किसी ने ढेर सारा सामान छोड़ कर उसके

ऊपर एक काला कपड़ा फेंक दिया था। बाकी कुछ नहीं।

जब रोना आता है, तो ऐसा लगता है जैसे मुँह के अंदर चींटियां रेंग रही हों। अंकुश को अभी ऐसे ही लगने लगा।

रोने को भगा देने के लिए अंकुश ने ऊपर देखा। लेकिन ऊपरी 'मंजिल' पर कुछ नहीं था। जब ममी-पापा होते तो अंकुश को ऊपर जाना बहुत अच्छा लगता। पापा उसे यूँ झुला कर ऊपर चढ़ा देते। फिर ममी पैर लम्बे कर लेतीं और पत्रिका पढ़ने लगतीं। अंकुश ऊपर चुपचाप पापा के इशारे का इंतज़ार करता, फिर झुक कर ममी की पत्रिका को एक झपाका लगाता। हमेशा ममी डर के मारे चीखने लगतीं। हमेशा।

और वह सुरंग वाली बात। अंकुश सुरंग से सचमुच तो नहीं डरता था। हरगिज़ नहीं, वह कोई बच्चा थोड़े ही था। लेकिन कितना मज़ा आता जब एक ज़ोर की सीटी बजती, अँधेरा हो जाता, और वह ममी की गोद में आराम से बैठा होता। अभी तो . . .

रोना फिर आने लगा, पर पापा ने अंकुश को बताया था कि वह बहुत बहादुर है। पापा ने कहा था, बस खिड़की के बाहर देखते रहना तब तुम बाकी सब भूल जाओगे। अंकुश खिड़की की ओर मुड़ा जो आधी खुली थी। उसने एक कंधे से खिड़की को धक्का दिया, जैसे पापा करते थे। खिड़की ज़ोर से उठी, और फिर – **धड़ाम!** – उसके हाथ पर गिर गई।

अंकुश दर्द से चीख उठा। फिर दीवार से दुबक कर सिसकने लगा। और तभी, "शू-ऊ-ऊ-ऊ!" एक सीटी इतनी ज़ोर से बजी जैसे किसी ने उसके कान को मुक्का मारा हो। ट्रेन गरजने लगी और अँधेरा छा गया।

ऐसा लगा कि घंटों तक उस घोर अँधेरे में सीटी की चीख चलती जा रही है। अंकुश की सिसकियाँ घबराहट की चीखें बन गईं। और जब उसे लगा कि अब वह और नहीं सह पाएगा, तो अँधेरा उठने लगा। धुँधली रोशनी में अंकुश ने देखा . . . जादू हो रहा है।

कोने में जो सामान पड़ा था वह हिलने लगा। फिर अपने आप उठ कर अंकुश के पास आया। काले कपड़े के नीचे से एक हाथ निकला। उस हाथ ने कपड़े के ऊपरी हिस्से को हटाया। और अंकुश ने देखा – **ममी!**

ममी? क्या ममी थीं? नहीं थीं? क्या ममी ट्रेन में छुप गईं थीं? ऐसा खेल ममी को बहुत अच्छा लगता था। लेकिन यह थोड़ा-सा ममी से अलग भी था। होठों पर पान का दाग था और कानों में सोने की बड़ी बालियाँ थीं। यह चेहरा ममी जैसे लगता था क्योंकि ममी जैसे *बोलता* था।

"अरे मेरा मुन्ना, मेरी चिड़िया, इतना डर लगा? लेकिन सुरंग ही तो था, मेरे राजा। आंटी के पास क्यों नहीं चले आए? आंटी की गोद में?"

फिर हाथ अंदर से निकला और पूरा काला कपड़ा खुल गया। अंदर से निकलीं एक पूरी बनी-बनाई आंटी। गोल-मटोल, शलवार-कुर्ता पहनीं हूई, और सर के ऊपर एक लम्बा-सा दुपट्टा। जब ममी धूप में साड़ी से सर ढाँक लेतीं, तो ऐसी ही दिखतीं।

इस नई आंटी ने उसे उठा कर अपनी गोद में बिठा लिया। उनके रेशम से कपड़ों में मुँह छुपाना बहुत अच्छा लग रहा था। और अब यह नई आंटी उसके चेहरे को पुचकार कर हँसने लगीं।

"तौबाह! क्या यह अल्लाह का बन्दा कभी बोलता ही नहीं है? मुन्ना, क्या तुम्हारी अम्मी ने तुम्हें यह कहा है कि कलकत्ता पहुँच कर ही बोलना?" अंकुश को हँसी आने लगी।

"अल्लाह का शुक्र है, हँसना तो आता है! डरते नहीं, मुन्ना। तुम्हारी फुपी बैठी है कि नहीं? चलो, अब तो लज़ीज़-लज़ीज़ चीज़ें खाने का वक्त हो गया।" आंटी ने एक डब्बा खोला जिसमें से गुलाब जामुन जैसी गोल-गोल रसीली मिठाइयाँ निकलीं।

अंकुश ने ज़ोर से सिर हिलाया। कहीं ऐसा न हो कि आंटी समझे कि वह मना कर रहा है।

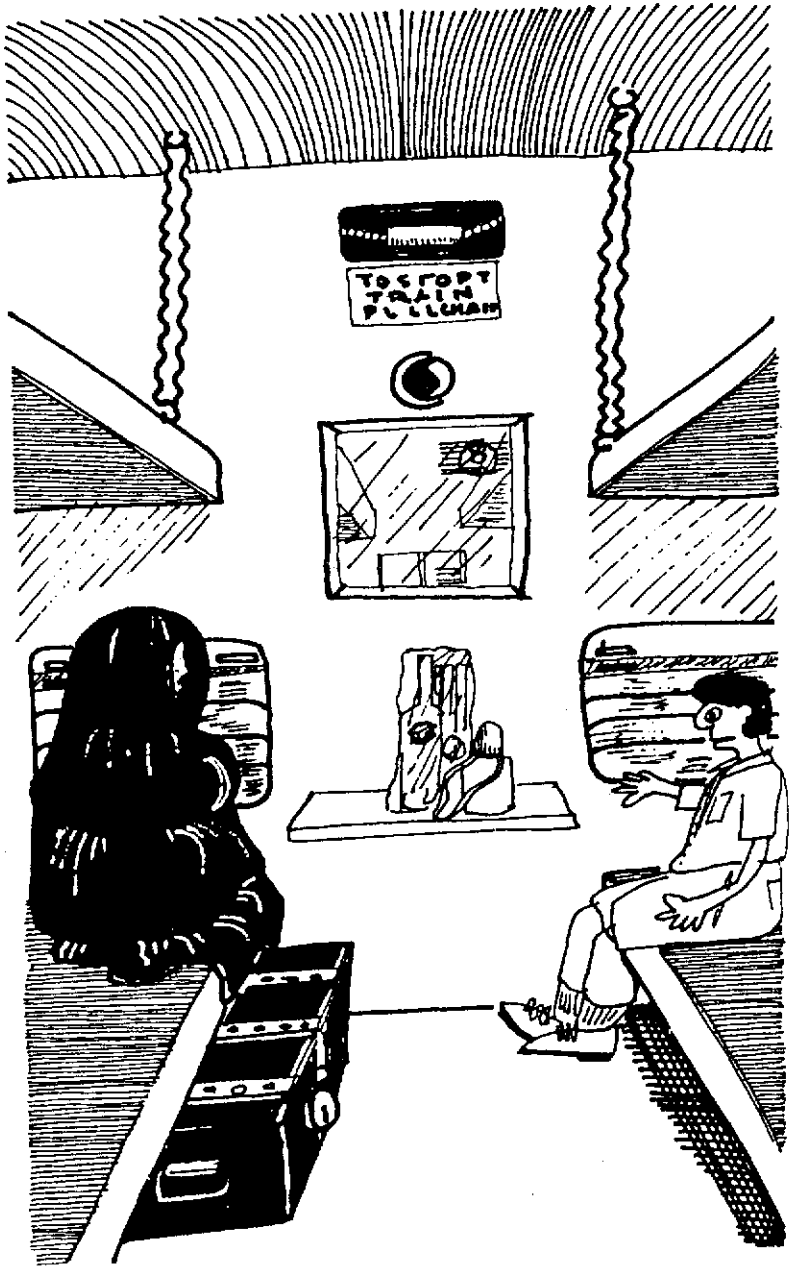

"आंटी, मुझे वह समोसे भी चाहिए," उसने कहा। अजीब बात थी, उसे ज़रा भी झिझक नहीं लग रही थी।

"नहीं बेटे, उन समोसों को रहने दो। उनमें कीमा भरा है और शायद तुम्हारे अम्मी-अब्बा को अच्छा न लगे। लेकिन यह गुलाब जामुन जी भर कर खा लो। चलो, पहले हाथ धो लो।"

अंकुश को बराबर पता था आंटी क्या करने वाली हैं। पहले एक छोटा तौलिया निकालेंगी। उसको पानी से भिगाएँगी। (आंटी ने काँच की बोतल से पानी निकाला। ममी थरमस से निकालती थीं।) फिर आंटी उसके हाथ और मुँह को तौलिए से पोंछेंगी। फिर नैपकिन अंकुश की गोद में बिछा, एक थाली भर कर गुलाब जामुन भी गोद में पहुँच गए। कितने स्वादिष्ट!

खाते-खाते अंकुश ने आंटी की ओर देखा। कुछ शर्मा कर उसने कहा, "आंटी, मैं समझा . . . मैं समझा था कि आप लगेज हो।"

"क्या!"

"क्योंकि आप उस काले कपड़े से ढकीं थीं।"

अब आंटी मारे हँसी के ऐसे हिलने लगीं जैसे रुकेंगीं ही नहीं। हँसी के आँसू निकल आए। अंत में आंटी ने उसे मज़ाक में एक झूठमूठ का तमाचा मारा। "इसको तो मैं ठीक करती हूँ! क्या मजाल!"

अंकुश ऊपर-नीचे उछलने लगा।

"आप तो लगेज हो! आप तो लगेज हो! लगेज!"

"हरगिज़ नहीं। मैं हूँ तुम्हारी सईदा फुपी।"

"लगेज!"

अंकुश सईदा फुपी की गोद में कूद पड़ा। उनके काले कपड़े को खींचा। "इसी से तो लगेज को ढाँकते हैं।"

"शायद। लेकिन मैं तो इससे अपने आप को ढाँपती हूँ। इसे बुर्का कहते हैं।"

अचानक हरि सिंह कुछ हड़बड़ाहट में डिब्बे में घुसा। दोनों को देख कर थोड़ा सा चौंका। "बाबा! मेरे ध्यान से उतर गया था। जब सुरंग से निकले थे तो आप को डर तो नहीं लगा?"

डर? अंकुश ने हरि सिंह से कहा "डर? मुझे? मैं तो कभी नहीं डरता! कभी नहीं!"

आज के शेर बनाने वाले

गीता हरिहरन

शुक्रवार की शाम थी। हफ़्ते की सबसे प्यारी शाम — होमवर्क का कोई झंझट नहीं।

निषाद अपने पापा की बड़ी सी, आराम वाली कुर्सी में पसार गया और पढ़ने लगा। कुछ ही हफ़्ते पहले माँ ने चमकदार पीले रंग की किताब दिलाई थी। नाम था पंचतंत्र।

निषाद ने किताब पर बनी तस्वीरों को देखा। भागते हुए लोगों के कुछ मज़ेदार चित्र थे। पेड़ पर चढ़े एक आदमी पत्तियों के बीच में से झाँक कर नीचे एक डरावने शेर को देख रहा था। उस पर और भी जानवारों की तस्वीरें थीं — सियार, ऊँट, लोमड़ी और कौआ।

तस्वीरों को देखते हुए निषाद सोच रहा था कि इन जानवारों की शक्लें उन शेरों, ऊँटों वगैरह से तो मिलती नहीं, जो मैंने चिड़ियाघर में देखे थे। इनके चेहरे तो इंसानों जैसे ही ज़्यादा लगते हैं। यही सोचते हुए निषाद ने पहली कहानी पढ़नी शुरू कर दी — 'शेर बनाने वाले'।

शायद आपने पहले यह कहानी सुनी होगी। तीन विद्वान थे। उन्होंने बड़ी-बड़ी पोथियाँ पढ़ रखी थीं और बड़ी सुंदर भाषा में बात कर सकते थे। उनका एक सीधा-सादा दोस्त था। उसने न तो दूसरों जितनी पढ़ी थीं और न विद्वानों वाले करतब दिखा सकता था। इसलिए बाकी दोस्त अक्सर उसे बेवकूफ़ कह कर उसका मज़ाक उड़ाया करते थे।

आपको कहानी याद आई? एक बार चारों दोस्त जंगल से गुज़र रहे

थे कि उन्हें हड्डियों का एक बड़ा सा ढेर दिखाई दिया।

तीन विद्वानों ने कहा, ''यही एक मौका है दुनिया को दिखाने के लिए कि हम कितने ज्ञानी हैं। देखो! यहाँ काफ़ी पहले कोई चीज़ मर गई थी। हम उसे फिर से ज़िंदा करा सकते हैं।''

पहले ने सही आकार में हड्डियाँ जमा कीं। अपने कारनामे पर खुश हो कर दूसरे से बोला, ''अब तुम्हारी बारी है।''

दूसरे विद्वान ने गर्व से कहा, ''ये देखो!'' उसने हड्डियों के ढाँचे को माँस, खून और खाल दे दिए।

तीसरे ने शेखी मारी, ''अरे यह तो कुछ भी नहीं है। मैं हाड़-माँस के इस ढेर में जान डाल सकता हूँ।'' यह कहने के साथ ही वह अपने कहे को कर दिखाने के लिए आगे बढ़ा।

तभी चौथे दोस्त ने, जिसे वे बेवकूफ़ समझते थे, उन्हें टोका।

''रुक जाओ,'' वह चिल्लाया। ''यह कोई भयानक जानवर लगता है। बल्कि मुझे तो लगता है कि यह शेर है। तुम उसमें दुबारा जान क्यों डाल रहे हो?''

तीनों विद्वानों ने उसकी बात को हँसी में उड़ा दिया।

''तुम इसके बारे में जानते ही क्या हो?'' उन्होंने पूछा। ''हम सारी दुनिया को और किस तरह दिखाएँगे कि हम कितने पहुँचे हुए हैं?''

उनका दोस्त समझ गया कि ये अब किसी भी तरह मानेंगे नहीं।

''ठीक है, तुम्हारी जो मर्ज़ी हो करो। लेकिन पहले मुझे पेड़ पर चढ़ जाने दो,'' उसने कहा और पास के एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ गया।

उसने पत्तियों के बीच में से नीचे झाँक कर देखा। तीसरा विद्वान शेर में फिर से जान डाल रहा था।

लंबी नींद के बाद जागते ही भूखा शेर दहाड़ के साथ एक के बाद एक तीनों विद्वान पर झपटा। जब तक शेर का पेट भरा, वहाँ हड्डियों का

एक नया ढेर जमा हो चुका था।

विद्वानों ने उस मरे हुए शेर को वैसे ही क्यों नहीं रहने दिया? अब वह नरभक्षी जंगल में घूमता रहेगा, नए-नए शिकार की तलाश में। उन्होंने अपने दोस्त की सलाह क्यों नहीं मानी?

निषाद बार-बार अपने आप से ये सवाल करता रहा, लेकिन कोई जवाब नहीं खोज पाया। और उसे अब नींद भी आने लगी थी . . .

उस रात को निषाद ने एक बड़ा ही अजीब सपना देखा।

शेर बनाने वाले उस पीली कहानी की किताब से निकल कर असली इंसानों में बदल गए। वे उन लोगों जैसे लग रहे थे जिनके बारे में माँ और पापा अखबारों में पढ़ते थे। पढ़ते हुए वे दुःख से सिर हिलाते थे, उस पेड़ वाले दोस्त की तरह।

सपने में निषाद ने एक पुराना पत्थर का खंभा देखा — चिकना, सुंदर, शहर के बीचोबीच, बड़े से सभागार की बगल में। निषाद को सपने में लगा कि यह खंभा उसकी याद में, उसके माता-पिता की याद में, उनके भी माता-पिता की याद में . . . हमेशा से वहीं खड़ा था।

कुछ लोगों का कहना था कि पहले यह एक चट्टान थी जिस पर कुछ उकेर कर लिखा हुआ था। लोग-बाग उस चट्टान पर अपनी यादगार और तरह-तरह की चीजें तराशने लगे। समय बीतता गया और चट्टान एक लंबे, सुंदर खंभे में बदल गई। यह बस कुछ लोगों का कहना भर था। पक्के तौर पर सभी सिर्फ़ इतना जानते थे कि जब से शहर अब जैसे शक्ल ली थी, तब से ही यह वहीं पर मौजूद था — शहर मानो उसी के चारों ओर फैला था।

निषाद जब नज़दीक पहुँचा तो उसने पहले सुना, फिर देखा, कि खंभे के आसपास एक बड़ी, हंगामाई भीड़ जमी थी। उनमें बहुत सारे जाने-पहचाने चेहरे दिखाई दिए। उसके माता-पिता, उसके स्कूल के अध्यापक, उसके दोस्त, और वृद्ध पड़ौसी थे। पास वाला दर्ज़ी और दुकानदार भी। सारे

के सारे हैरान नज़र आ रहे थे।

दो आदमी और एक औरत खंभे के सामने खड़े चीख रहे थे। सब उन्हीं की बातों में मग्न थे। वे क्या कह रहे थे यह निषाद सुन भी नहीं पाया, पर उसे लगा कि इनके चेहरे वहाँ खड़े औरों जैसे नहीं थे। वे गुस्से से बिगड़े हुए थे।

कोई एक ने चिल्लाया: "यह खंभा यहाँ क्यों लगा रहे? हमारे नायक ने तुम सब के लिए इतना कुछ किया है — शहर के बीचोबीच उन्हीं की मूर्ति हमें चाहिए। कोई जानता है कि यह खंभा यहाँ क्यों लगाया गया था? वैसे भी यह सैकड़ों साल पहले सैकड़ों मील दूर के किसी आदमी ने बनवाया था। हमें इससे क्या मतलब?"

"इसे उखाड़ दो," औरत चीखी। "उठा ले जाओ।"

दूसरे आदमी ने नरमी से लोगों से कहा, "हमारी बात मान जाओ। आखिर हम तुम्हारे नेता हैं।" निषाद ने उसकी तरफ़ देखा। उसकी आँखों में लालच था, और हाथ यूँ जैसे हवा से कुछ छीन रहे हों।

चीख-पुकार बराबर जारी रही। उनके चेहरे गुस्से से और भी तमतमाते जा रहे थे। निषाद को लगा कि यह गुस्सा एक से दूसरे पर झपट कर उन्हें खाए जा रहा है।

अचानक दुकानदार उनके साथ चिल्लाने लगा, "इसे तोड़ डालो।"

टोकते हुए दर्ज़ी बोला, "नहीं। जब से हम यहाँ रहते हैं, तब से हमने इसे यहीं देखा है।" सब आपस में लड़ने-झगड़ने लगे।

और तभी, हवा चीरता हुआ एक पत्थर उनके बीच में से निकल कर खंभे के सामने आ गिरा।

सारे के सारे लोग स्तब्ध रह गए। उन्होंने पहले पत्थर की तरफ़ देखा, फिर एक दूसरे को, और फिर खंभे की तरफ़। ऐसा लगा जैसे उनके सामने कोई विशाल, भयंकर नरभक्षी शेर आ खड़ा हुआ हो।

निषाद का अजीब सा दम घुटने लगा। उसकी एकदम से आँख खुल गई और वह हाँफते-हाँफते उठ बैठा। दूसरे कमरे से माँ उसे बुला रही थी।

आँखें मलते हुए उसने फिर किताब उठाई और अल्मारी में रख दी। निषाद सोच रहा था: "काश वह सीधा-सादा मूर्ख सपने में भी कहीं छुपा हो। बल्कि ऐसे बहुत सारे भले, भाईचारे से भरे, सरल बेवकूफ़ हों।"

अनुवाद राजेन्द्र शर्मा

जीतने वाली टीम

सावित्री नारायणन

आदित्य की आँखें खुलीं तो एक अजीब खामोशी छाई हुई थी। बाहर अभी अँधेरा था। रसोई में भी रोशनी नहीं थी। अक्सर जब वह जागता, आई और बाबा रसोई में पहुँच चुके होते। बिस्तर में लेटे-लेटे तमाम जानी-पहचानी आवाज़ों और खुशबुओं के बीच उन्हें बतियाते सुनना, आदित्य को बड़ा पसंद था। प्रेशर कुकर की सीटी, बीच-बीच में नल से पानी का बहना, फ़्रिज के दरवाज़े का बंद होना, और आखिर में दाल में फोड़नी डाले जाने पर छन्न सी आवाज़। कुछ ही देर में आई पूजा करने बैठती। फिर भुनी प्याज़ की महक में अगरबत्ती की गंध घुल-मिल जाती।

लेकिन आज उसे एक शब्द तक सुनाई नहीं दिया। कुछ ज़्यादा ही खामोशी थी। शायद अभी सुबह नहीं हुई है, आदित्य ने सोचा। उसने सिर तक चादर ओढ़ ली और फिर से सोने की कोशिश करने लगा।

तभी उसे वह आवाज़ सुनाई दी। कोई सुबक रहा था। उसने धीरे से पुकारा, "आई!" कोई जवाब नहीं मिला। अँधेरे में उसे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। भगवानजी की तस्वीर के सामने जलने वाली लाल बत्ती भी नहीं। "आई, मुझे सुस्सू जाना है।" इस बार वह ज़रा उँचा बोला।

"श . . . श्श" बाबा ने धीमे स्वर में कहा। सिसकियाँ रुक गईं। आदित्य भी चुप हो गया।

अब बाहर से शोर-गुल सुनाई दी। "मारो! मारो!" लोग चिल्ला रहे थे। ज़ोर-ज़ोर की चीख-पुकार और खिड़की के नज़दीक भारी कदमों की

आहट आई। किसी ने ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाया। आदित्य ने डर कर आँखें भींच लीं, चादर से मुँह ढाँप लिया और हाथों से अपने कान बंद कर लिए। "अर्जुन, फाल्गुन . . ." वह मन ही मन जपने लगा। धीरे-धीरे आवाज़ें गायब हो गईं। बुरा सपना है समझकर वह फिर सो गया।

इस बार उसकी आँखें खुलीं तो दिन काफ़ी चढ़ आया था। अरे, स्कूल के लिए देर हो गई है, उसने सोचा और बिस्तर से कूद निकला। उसने खलील के साथ जल्दी स्कूल जाकर पिछवाड़े से आँवला बटोरने का प्रोग्राम बनाया था। जेब भर के आँवले बड़े काम के आते -- उनके बदले में इमली के टुकड़े, रंगीन चॉक या कंचे तक मिल सकते थे। पिछले ही हफ़्ते उन्होंने आँवले के बदले में तुषार से लाल सेलोफ़ेन कागज का बड़ा सा चमकीला टुकड़ा 'खरीदा' था। लेकिन अगर वे सबसे पहले नहीं पहुँचे तो आँवले कहाँ से मिलेंगे?

जल्दी-जल्दी दाँत माँजने के लिए दौड़ता हुआ आदित्य बोला, "आई, मैंने तुमसे कहा नहीं था कि मुझे जल्दी जगा देना? खलील तो पहले ही चला भी गया होगा।"

"आज तुम स्कूल नहीं जाओगे," बाबा बोले। वे आई के साथ रसोई में बैठे हुए थे। "बाबा!" आदित्य ने कुछ कहना शुरू किया था, पर बाबा की कड़ी नज़र के सामने हिम्मत नहीं पड़ी। कभी तो बाबा इतने हँसमुख लगते, और कभी इतना ज़्यादा सख्त! आँवले की बात उन्हें कैसे बताएँ? आदित्य ने आई की तरफ़ देखा। वह सिर झुकाए लहसुन छीलने में लगी हुई थी। भगवानजी की तस्वीर के आगे तेल का दीया अब भी जल रहा था। अगरबत्ती की महक से रसोई भरी थी। "मैं स्कूल जा रहा हूँ," आदित्य ने ऐलान किया। अचानक न जाने कहाँ से उसमें बड़ी हिम्मत आ गई थी।

बाबा गुस्से में कुछ कहने ही वाले थे कि आई बोल पड़ी, "आदित्य, कल रात गड़बड़ हुई थी। आज सब कुछ बंद रहेगा।"

अच्छा, तो वह सपना नहीं था, नहाने जाते हुए आदित्य ने सोचा। मगर वे लोग किसके पीछे थे? स्कूल क्यों बंद है? बाबा से पूछने का कोई फ़ायदा नहीं, उनका मिज़ाज पहले ही बिगड़ा हुआ था।

"आई, मेरा पाव!" नाश्ते के लिए लकड़ी के पटरे पर बैठ कर आदित्य ने पुकारा। वह हर रोज़ मक्खन और पाव ही खाता था, पर जी कभी नहीं भरता। नरम, गुदगुदा पाव और उस पर आई का लगाया ढेर सारा मक्खन, मुँह में रखते ही घुल जाता!

"आज पाववाला आया ही नहीं," आई बोली। "अब दूध की माँग भी मत कर देना। दूधवाला भी नहीं आया है।" आई का चेहरा गंभीर था।

आदित्य ने बिस्कुट और बटाटा पोहा गटके, एक गिलास पानी पिया और उठ गया। वह सोच रहा था कि इस अचानक छुट्टी का सबसे अच्छा इस्तेमाल कैसे किया जाए? उसने पलंग के नीचे से बल्ला निकाला और सिर पर कैप रखी। कैप पर उसने बड़े प्यार से अपने नए स्कैचपैन के साथ तीन गिरते विकेट और गेंद बनाए थे। वह सामने के दरवाज़े से निकल ही रहा था कि आई तेज़ आवाज़ में बोली, "आज घर में ही रहो।"

"आई, मैं कोई दूर थोड़े ही जा रहा हूँ। मैं तो बस खलील के साथ क्रिकेट खेलने जा रहा हूँ।"

आई और बाबा की नज़रें मिलीं। बाबा ने कहा, "क्या तुम एक दिन घर में नहीं रह सकते?"

"अच्छी बात है," आदित्य बोला। "मैं खलील को बुला लेता हूँ। हम घर के अंदर ही साँप-सीढ़ी खेल लेंगे।"

अब फिर आई ही बोली, "रात में गड़बड़ी हुई थी। घर से बाहर नहीं जाना है।" आदित्य ने मुँह लटकाया, अपना लट्टू उठाया और फ़र्श पर ही जम गया।

जैसे-जैसे दिन चढ़ता गया आदित्य की समझ में आ गया कि बहुत

भारी गड़बड़ है। बाहर से बड़ी डरावनी आवाज़ें आईं — चीखती, चिल्लाती भीड़ों का शोर-शराबा। एकाध बार उसे पुलिस की गाड़ियों के ज़ोरदार साइरनों की भी आवाज़ सुनाई दी। खिड़कियाँ और दरवाज़े अच्छी तरह बंद थे। कोई भी घर से बाहर नहीं निकला।

दोपहर के करीब दरवाज़े पर बदहवास दस्तक हुई। गणेश मामा और वैशाली मामी अपने बच्चे के साथ आए थे। "पूरा का पूरा इलाका जल रहा है," मामा ने कंधे पर टंगे झोले उतारते हुए कहा। "जो कुछ हाथ पड़ा हमने भरा और बस यहाँ चले आए," मामी बोली। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

तीन दिन बाद, जब आखिरकार आई ने बाहर खेलने की इजाज़त दी, आदित्य की खुशी का ठिकाना नहीं था। "पर आँगन में ही खेलना," आई ने कहा। "गेट से बाहर पाँव भी मत रखना।"

"अच्छा आई," आदित्य बोला, मगर सीधे खलील के घर की ओर भागा। वे कब से नहीं मिले थे।

खलील गणपति मांदिर के बगल की चाल में रहता था। हर शाम, आदित्य जब आई और कमला मौसी के साथ आरती के लिए जाता, खलील से उसकी मुलाकात ज़रूर होती थी। मंदिर की सीढ़ियों के नज़दीक, अगरबत्ती और धूप की दुकान के सामने, खलील उसका इंतज़ार करता था। आदित्य मंदिर के अंदर जाकर घंटा बजाता, मूर्ति को प्रणाम करता, कटोरे में रखे सिंदूर से माथे पर टीका लगाता और फिर पोपले पंडितजी से प्रसाद लेकर बाहर खलील के पास भाग निकलता।

दोनों बाँटकर प्रसाद खाते। खलील की जेब में भी हमेशा कुछ न कुछ होता था, आदित्य को देने के लिए — थोड़ा सा हलवा हो या गुड़ की डली। खलील की अम्मी अपने दरवाज़े के बाहर मछली साफ़ करते-करते उसे बुलातीं, "आदित्य बाबा, तुम अंदर क्यों नहीं आ जाते?"

अब खलील की गली देखकर आदित्य को ऐसा लगा कि उसकी छाती में कोई गोला सा उठ रहा है, जो बढ़ते-बढ़ते इतना बड़ा हो गया कि उसका साँस लेना मुश्किल हो रहा था। पूरी की पूरी गली की ही शक्ल बदल गई थी। घरों को तोड़-फोड़ दिया गया था। खिड़कियों के शीशे, एस्बैस्टस की छतें और ईंट की दीवारें, सब मलबे में बदल गई थीं। आदित्य को राख और अधजली चीज़ों का एक ढेर दिखाई दिया। उस में ज़ोहरा की प्लास्टिक की बड़ी सी गुड़िया थी, चेहरा जला हुआ। आदित्य का दिल ही बैठ गया। खलील का नया पीला बल्ला भी वहीं पड़ा था, बिल्कुल टूटा-फूटा। बैंत की टूटी कुर्सियों और राख के बीच दबी पड़ी थी खलील की गेंद, जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में उसका नाम लिखा हुआ था। आदित्य ने उसे उठा कर देखा कि वह अब भी नई जैसी है। उसने सोचा, स्कूल में मिलेंगे तो खलील को लौटा दूँगा।

आखिरकार, अगले सोमवार को जब स्कूल खुला, आदित्य गेंद साथ ले जाना नहीं भूला। लेकिन खलील स्कूल में नहीं मिला। खलील ही क्यों, सुनयना, इमरान, रीतेश, सब के सब गायब थे।

"टीचरजी, खलील कहाँ है? और बाकी सब?"

"वे आ जाएँगे," टीचरजी बोलीं। पर उनके सुर में कुछ ऐसा था, जिससे आदित्य को महसूस हुआ कि वे अब नहीं आएँगे। उसे रोना आ गया। खलील उसका सबसे अच्छा दोस्त था। उसके साथ कितना मज़ा आता था। कभी-कभी खलील स्कूल के दरवान की नकल उतारता था — मुँह जैसे पूरा पान की पीक से भरा हुआ, वह बच्चों को दीवार पर चढ़ने के लिए डाँटता। और बूढ़े पंडितजी की भी! खलील मंदिर के बगल में रहता था सो उसे आरती याद थी, और वह पंडितजी की नकसुरी आवाज़ की अच्छी नकल उतारता। खलील के साथ उसकी दोस्ती कितनी पक्की थी। कोई भी झगड़े में वे एक ही तरफ़ होते। उन्हें हमेशा एक दूसरे की मदद का भरोसा

था। खेल में अगर दोनों एक ही टीम में होते, तो आदित्य को विश्वास होता कि उन्हीं की टीम ज़रूर जीतेगी।

अब उसने क्लास की सुजाता को कहते सुना, ''सारे मुसलमान मर गए हैं — पापा ने मम्मी से कहा। और बहुत सारे लोग शहर छोड़ कर दूसरी जगहों पर चले गए हैं।'' आदित्य को फिर लगा कि उसकी छाती में कुछ फँस सा रहा है।

बाद में हैडमास्टरनीजी ने सबसे कहा, ''तुमको पता ही है कि बहुत से लोगों के घर जल गए हैं। उनका सब कुछ खत्म हो गया है। अपने माता-पिता से कहना कि इन गरीबों के लिए पुराने कपड़े, चावल, चीनी, जो भी बन पड़े दें।'' आदित्य ने कल्पना की कि इन 'गरीबों' में खलील भी है — किसी और के पुराने कपड़े पहने, खिचड़ी लाइन में खड़े। उसकी आँखें आँसुओं से भर गईं।

''बाहर जा कर खेलो,'' शाम को आई ने आदित्य से कहा। ''देखो चिंटू बुला रहा है।'' आई गेहूँ साफ़ कर रही थी और उसे एक बड़े से बर्तन में भरती जा रही थी। बाबा आने पर आई उनसे आटा पिसाने को कहेगी — खलील के घर के पास वाली चक्की में। आई को देखकर आदित्य को याद आया कि जब भी उनके पास पैसे होते थे, खलील और वह मिठाई खाने चले जाते। मिठाई का दुकान आटा चक्की के बगल में ही था और वे हमेशा वहाँ रुककर चक्की वाले को देखते, जो सिर से पाँव तक आटे से लथपथ रहता था। उसकी आँखों की बरौनियाँ तक मटमैली सफ़ेद हो जाती थीं।

आई बोली, ''बात क्या है, आदित्य?''

''आदित्य आ जा,'' चिंटू और बब्लू बुला रहे थे। ''चल क्रिकेट खेलें। पहले बैटिंग तेरी रही।''

लेकिन आदित्य नहीं निकला। वह फ़र्श पर ही पसरा अपना लट्टू नचाता रहा।

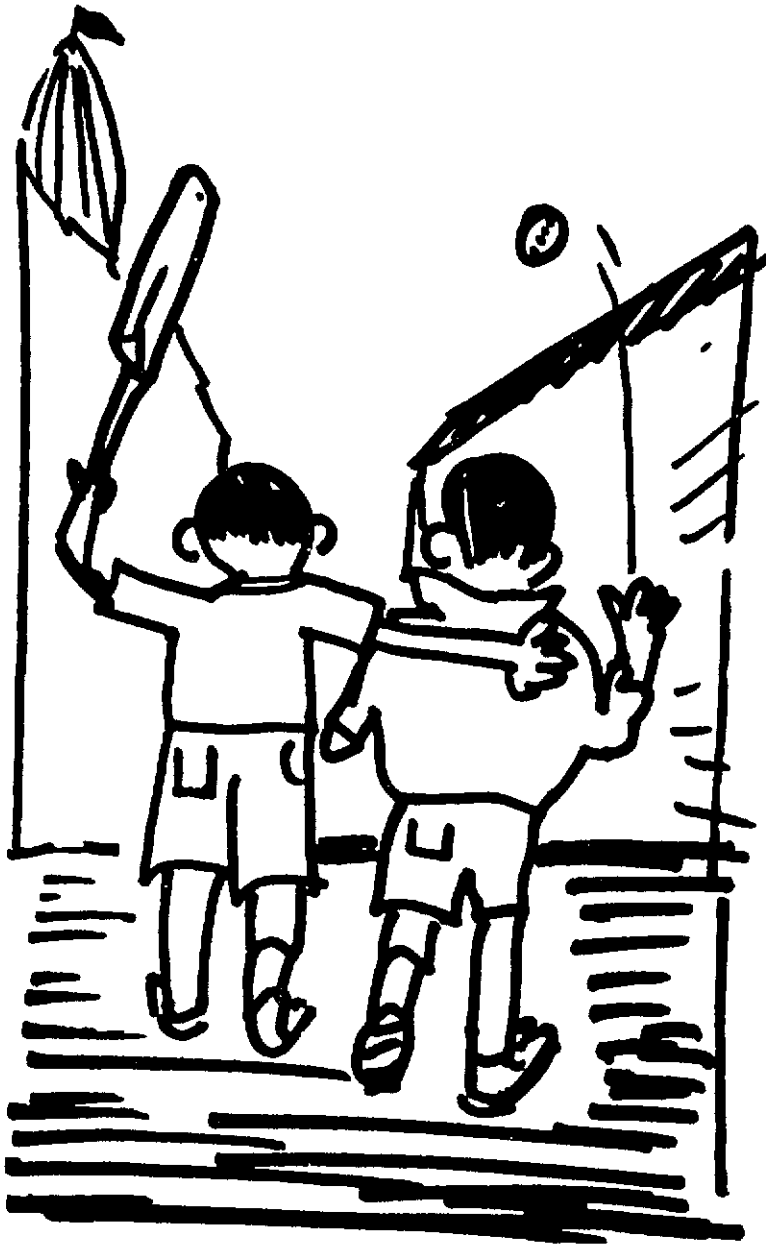

"आई, जब भी तुम कुछ चाहते हो, तुम हमेशा भगवान से प्रार्थना करती हो। याद है तुमने वैशाली मामी के लिए प्रार्थना की थी कि उनका बच्चा स्वस्थ पैदा हो। अगर मैं चाहूँ कि खलील लौट आए तो मैं किस भगवान से प्रार्थना करूँ — अपने गणपति से या खलील के अल्लाह से?"

आदित्य को डर था कि आई हँसेगी, जैसा अक्सर उसके कोई भी गंभीर सवाल पूछने पर होता था। पर आज आई उसे अपने सीने से लगा कर बोली, "ओह मेरे लाल। तुम चाहे किसी भी नाम से पुकारो, खलील तुम्हारी प्रार्थना से लौट आएगा क्योंकि भगवान सारे बच्चों का होता है।"

उस रात सपने में आदित्य को भगवानजी दिखाई दिए। अजब बात यह थी कि उनकी आवाज़ बाबा की सी लग रही थी: "आज कम्पनी में रज़्ज़ाक मियाँ मिले। वह अपने चचेरे भाइयों के साथ डोंगर चाल में रह रहे हैं। जैसे ही कर्ज़ा मिलेगा, वह फिर से यहाँ अपना घर बनाएँगे और वापस आ जाएँगे।"

"गाँव में खेत बेचकर हमें जो पैसे मिले थे, उसका क्या हुआ? हमें फ़ौरन तो उस पैसों की ज़रूरत नहीं है," आदित्य को आई की आवाज़ सुनाई दी। क्या भगवान की आवाज़ माँ जैसी भी हो सकती है?

अगले रोज़, स्कूल से वापस लौटते हुए आदित्य गणपति मंदिर गया, भगवान को खलील की याद दिलाने। पंडितजी बैठे अखबार से पंखा झल रहे थे, उनका मुँह हमेशा की तरह पान की पीक से भरा हुआ। उन्होंने जब पूछा, "आदित्य बाबा, क्या बात है?" पान की पीक की धार ठोड़ी तक बह आई। आदित्य ने सिर हिलाया और चल पड़ा।

वह कबूतरों को देखने के लिए रुका, जो छोटे से चौक पर फैले दाने चुग रहे थे। यह चौक हमेशा कबूतरों से भरा रहता था — सैकड़ों कबूतर। क्या ये हर समय खाते ही रहते हैं, आदित्य ने सोचा, या उनकी भी स्कूल जैसे खाने की कोई घंटी बजती? या फिर बाबा की कम्पनी जैसा कोई

साइरन, जिसे सुनते ही झुंड के झुंड कैंटीन चल पड़ते?

अचानक आदित्य कबूतरों को भूल गया। उसे आगे गली में बाबा दिखाई दिए, खलील के अब्बा से बातें करते। आदित्य दौड़कर गली पहुँचा तो देखा कि दो आदमी खलील के घर की मरम्मत करने में लगे हुए थे। टूटी खिड़कियों को बदला जा चुका था और एक नया रंगा हुआ दरवाज़ा और एस्बैस्टस की नई छत लग चुकी थी। तभी खलील घर से बाहर निकला, हमेशा की तरह खुश-खुश।

"ऐ . . . खलील।" आदित्य चिल्लाया। "इधर आ, मैंने तेरा बॉल बचा रखा है।" उसने खुशी से खलील का हाथ पकड़ा। "चल खेलते हैं।"

बाबा और खलील के अब्बा मुस्कुरा रहे थे, लेकिन उनकी आँखों में आँसू थे। ये बड़े लोग भी कमाल करते हैं, आदित्य ने सोचा — पता नहीं कब रो पड़ेंगे या हँस देंगे।

अगले ही पल, और सब भूल कर, हाथों में हाथ डाले, जीतने वाली टीम के खिलाड़ी घर की ओर दौड़ रहे थे।

अनुवाद राजेन्द्र शर्मा

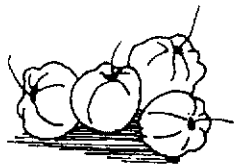

संगीत सम्राट

स्वपना दत्ता

थके हुए हाथों से संगीतकार ने धीरे-धीरे, आहिस्ता से अपना तानपूरा गलीचे पर टिकाया। राग दरबारी के सूक्ष्म स्वर अब भी सभागार में गूँज रहे थे। बादशाह अकबर ने निगाहें उठाईं। उनकी आँखों में सराहना की चमक थी। "बहुत अच्छे। वाकई लाजवाब। मैं आपका गाना हर रोज़ सुनता हूँ और फिर भी जी नहीं भरता।"

तानसेन ने कृतज्ञता से सिर झुकाया।

"मेरे ख्याल में आपकी आवाज़ दुनिया भर में सबसे सुरीली है," अकबर बोले।

"जी नहीं, शाहंशाह।" तानसेन ने मुस्कुरा कर कहा। "एक शख्स ऐसे हैं जो मुझसे कहीं बेहतर गाते हैं।"

"वाकई?" अकबर को जैसे यकीन ही नहीं आया। "तब तो हमें अपने दरबार में उन्हें बुलाना चाहिए। आप इसका इंतज़ाम कर सकते हैं?"

तानसेन ने इंकार में सिर हिलाया। "जहाँपनाह, मुझे नहीं लगता कि वे आएँगे।"

"क्या? यह जानने के बाद भी नहीं कि खुद बादशाह ने उन्हें बुलावाया है?"

"नहीं, तब भी नहीं।"

कोई और सम्राट होते, तो इस जवाब पर आग बबूला हो गए होते। लेकिन अकबर की बात दूसरी थी। तानसेन की कुछ सहमी सी नज़रों के

सामने मुस्कान बिखेरते अकबर बोले, "अच्छी बात है, उस्तादजी। अगर वे नहीं आएँगे तो हम खुद उनके पास जाएँगे। आप हमें ले चलेंगे?"

"ज़रूर, महाराज। लेकिन आप वहाँ हिंदुस्तान के बादशाह के रूप में नहीं जा सकते।"

"हम एक साधारण, संगीतप्रेमी बनकर चलेंगे।"

तानसेन ने जिनके गाने का ज़िक्र किया था, वे थे संत हरिदास। उन्होंने तानसेन को संगीत की शिक्षा दी थी, और सब कुछ त्याग कर अब

वे एक आश्रम में रहते थे। जब तानसेन और बादशाह उनकी झोंपड़ी में पहुँचे, वे अपने रोज़मर्रा के काम निपटाने में लगे हुए थे। उनसे गाने का अनुरोध किया गया, तो वे पहले तो मुस्कुराए फिर दृढ़तापूर्वक बोले, ''मेरी गाने की उम्र न जाने कब की निकल चुकी है।'' उनका सबसे प्रिय शिष्य भी उन्हें टस से मस नहीं कर पाया।

लेकिन तानसेन को भी मालूम था कि क्या करना चाहिए। उन्होंने गुरु को गाकर सुनाने की पेशकश की। गाते-गाते तानसेन ने जान-बूझकर एक गलती कर दी।

''यह तो सही सुर नहीं है,'' आश्चर्य से गुरुजी ने टोका। ''तुम्हें हुआ क्या है?''

तानसेन की समझ में गुरुजी की बात जैसे आई ही न हो, उन्होंने दोबारा वही गलती कर दी। हारकर संत हरिदास ने तानसेन के हाथ से तानपुरा ले लिया और सही सुर लगाकर दिखाया। फिर क्या था, फिर तो वे गाते ही चले गए।

भोर की पहली किरणों या फूलों की भीनी खुशबू की तरह उनके स्वर की मिठास वनभर में फैल गया। सभी सम्मोहित हो कर सुनते रहे। बादशाह को एहसास हुआ कि तानसेन ने सच्ची बात कही थी। इससे पहले उन्होंने कभी ऐसा कुछ सुना नहीं था। उन्होंने सोचा ही नहीं था कि ऐसा संगीत हो भी सकता है।

वापस लौटते हुए वे कुछ खामोश थे। अचानक अकबर ने तानसेन से पुछा, ''उस्तादजी, आप उनके जैसा क्यों नहीं गा सकते?''

तानसेन मुस्कुराए। ''शाहंशाह, मैं आपके कहने पर गाता हूँ — हिंदुस्तान के बादशाह के कहने पर। लेकिन गुरुजी उनके लिए गाते हैं जो बादशाहों के भी बादशाह हैं। उनका संगीत हृदय की गहराई से उभरता है, अनायास और स्वतंत्र। मेरा संगीत उस ऊँचाई को कैसे छू सकता है?''

सॉरी, बेस्ट फ्रेन्ड!

हेमांगिनी रानाडे

वह नया-नया दिल्ली से आया था। स्कूल अभी शुरू नहीं हुए थे। ममा को ऑफ़िस जाना पड़ता और वह घर में अकेला रहता। वैसे ममा को यह बात अच्छी नहीं लगती थी, पर क्या करते? नौकरी के सिलसिले में वे लोग बम्बई आए थे। पापा की मौत के बाद बड़ी परेशानी से ममा को यह नौकरी मिली थी।

सोनू ममा को समझाता, ''मैं अब छोटा थोड़े ही हूँ। छः साल का हूँ। तुम क्यों चिंता करती हो? मैं मज़े में रहूँगा।''

पर मन ही मन उसे बहुत डर लगता। दिल्ली में कितने ही लोग थे। दादा, दादी, चाचा, चाची, उनके बच्चे। पास पड़ोस वाले।

ममा उसे हिदायतें देकर जाती। ''देख, बाई के अलावा किसी के लिए दरवाज़ा मत खोलना। कोई खटखटाए तो अंदर से ही पूछ लेना। संभल कर रहना। खिड़की में से झुकना नहीं। समय पर खा लेना। गैस नहीं खोलना।''

वह रोज़ सारी हिदायतें ध्यान से सुनता। सर हिलाकर ''हाँ'' कहता। धीरे-धीरे ममा के बाहर निकलने पर वह स्वयं कहने लगा, ''दरवाज़ा नहीं खोलूँगा। कोई खटखटाएगा तो अंदर ही से पूछ लूँगा। संभल कर रहूँगा। खिड़की में से झुकूँगा नहीं। समय पर खा लूँगा। गैस को हाथ तक नहीं लगाऊँगा।'' और दोनों माँ-बेटे हँस देते।

लेकिन उसे घर में बहुत अकेला सा लगता। टीवी देखना, किताबें

खोल कर बैठना, बरामदे में से नीचे झाँकना, खाना, सो जाना! अकेले में और क्या हो सकता है? क्या अकेले में खेल सकता है कोई?

ममा के जाने के बाद बाई आती। काम खत्म हो जाता तो उसे बताकर दरवाज़ा खींचकर चली जाती। दरवाज़ा बंद हो जाता। कभी-कभी सोनू दरवाज़े पर कान लगाकर सुनता। बाजू वाले घर में कोई आवाज़ सुनाई दे शायद पर वहाँ भी कुछ नहीं। वे लोग भी सुबह चले जाते, शाम को आते।

जब शाम को ममा आती तो सोनू को लेकर घूमने जाती। पर तब ममा इतनी थकी होती कि उनमें ज़्यादा बात करने की ताकत नहीं रहती। और सोनू के पास प्रश्नों के लच्छे होते। ममा थोड़ी देर बोलती फिर चुप हो जाती। सोनू समझ जाता ममा बहुत थक गई है। वह भी चुप हो जाता।

एक दिन बाई के साथ उसकी बेटी आई। बाई ने उसे डाँट कर कहा, ''चुपचाप बैठ जा'', और अपना काम करने लगी। सोनू ने लड़की को देखा, दुबली-पतली, कुछ मैली सी। वह दुबक कर दरवाज़े के पास बैठी थी।

''तुम्हारा नाम क्या है?''

उसने डर के मारे कुछ न कहा।

''अरे तुम्हारा नाम बताओ!''

बाई ने डपटकर कहा, ''अरे सुनाई नहीं देता बाबा क्या कह रहा है? नाम बातओ।''

''रहीमन,'' एक महीन-सी आवाज़ आई।

''तुम स्कूल जाती हो?''

उसने सर हिला दिया।

''क्यों नहीं जाती स्कूल? मैं जाने वाला हूँ इस जून से। बहुत बड़े स्कूल में।'' वह देखती रही।

बाई ने पीछे से कहा, ''स्कूल कहाँ जाएगी, बाबा? घर का काम करती है।''

''काम करती है? पर यह तो छोटी है।''

बाई हँसने लगी।

सोनू ने रहीमन को अंदर बुलाकर खिलौने, किताबें दिखाना चाहा, पर रहीमन वहीं बैठी रही। आखिर सोनू अपना काफ़ी सामान वहीं ले आया और उसे दिखाने लगा।

जब बाई जाने लगी तो हिम्मत बाँधकर सोनू बोला, ''इसे कल भी लाना, बाई।''

बाई मुस्कुराकर चल दी। रहीमन ने पीछे मुड़कर सोनू को देखा। सोनू ने हाथ हिलाया। फिर दरवाज़ा बंद हो गया। सोनू दौड़कर बरामदे में गया। वहाँ से उसने रहीमन को टा-टा किया। रहीमन ऊपर देख रही थी। पर उसने टा-टा नहीं किया।

उस शाम ममा को बताने के लिए सोनू के पास बहुत कुछ था। एक साँस में उसने ममा को रहीमन की बात बताई। ममा उसके उत्साह से भरे चेहरे को देखती रही।

इतवार को ममा की बाई से कुछ बातें हुई और रहीमन रोज़ बाई के साथ आने लगी। अब वह दरवाज़े के पास बैठी नहीं रहती। बल्कि घर में आती, सोनू के खिलौने देखती, उनको छूती। सोनू की किताबें खोलकर चित्र देखती। सोनू उसे समझाता, दिखाता और खुश होता। जब ऊब जाते तो नए-नए खेल ईजाद करते।

रहीमन के कपड़े साफ़ रहने लगे। उसके बालों पर तेल लगने लगा। दोनों मिलकर दोपहर का खाना खाते। ममा अब दोनों के लिए खाना बनाकर रख जाती।

बाई सुबह रहीमन को ले आती। शाम को जब सारे घरों के काम

खत्म हो जाते तो उसे ले जाती।

अब सोनू का दिन जल्दी-जल्दी बीतने लगा। पलक झपकने में शाम हो जाती। ममा को बताने के लिए रोज़ नया कुछ होता। ममा भी सोनू की बातें सुनकर कभी मुस्कुराती, कभी हँसती।

रहीमन के साथ सोनू घंटों बोलता। अपनी सारी राज़ की बातें, बड़े होकर इंजिन ड्राइवर बनने की अपनी इच्छा, अपने पिता की अच्छाइयाँ, दिल्ली के घर की खूबियाँ। अहा! कितनी कितनी बातें।

''जानती हो ममा, मैं रहीमन का सबसे अच्छा दोस्त हूँ। अपनी गाड़ी में उसको बिठाकर ज़रूर सैर कराऊँगा।'' ममा कौतुक से उसे देखा करती।

स्कूल शुरू होने ही वाले थे। पहली तारीख को ममा ने कुछ नोट निकाल कर सोनू को दिए। ''यह लो। बाई आए तो उन्हें दे देना, उनकी तनख्वाह।'' और एक लिफ़ाफ़ा देकर कहा, ''और यह रहीमन के लिए।''

''रहीमन को किस लिए, ममा?'' सोनू ने पूछा।

''क्यों? वह रोज़ आती नहीं है तुमसे खेलने?'' ममा मुस्कुराने लगी।

यानि? रहीमन उससे खेलने इसलिए आती है कि ममा उसे पैसे देती है? तो मैं रहीमन का बेस्ट फ्रेंड नहीं हूँ? वह मुझसे मिलने नहीं आती? अपनी गरज़ से आती है? सोनू का मुँह फूल गया।

जब रहीमन आई तो सोनू ने उसके सामने लिफ़ाफ़ा रख कर कहा ''लो। यह तुम्हारी तनख्वाह है।'' बाई ने पीछे से लपक कर लिफ़ाफ़ा ले लिया।

उस दिन सोनू न रहीमन के साथ खेला, न कुछ बोला। कमरे में जाकर किताब पढ़ने लगा। जब रहीमन ने आकर उससे किताब छीननी चाही, तो सोनू ने झल्लाकर कहा, ''तुम क्या जानो पढ़ना-लिखना क्या

होता है। गँवार कहीं की।''

रहीमन सोनू की तरफ़ टुकुर-टुकुर देखने लगी। बोली कुछ नहीं।

शाम को ममा लौटी तो सोनू ने उनसे भी कोई बात नहीं की।

इतवार को ममा ने रहीमन को बुलवाया था। पास में समन्दर का किनारा था। आज वे वहाँ दोनों बच्चों को ले जाना चाहती थी। फिर तो स्कूल शुरू हो जाते।

सोनू का गुस्सा अभी ठंडा नहीं हुआ था। वह चुपचाप उनके साथ चलता रहा। समन्दर किनारे ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। मौजों की आवाज़ आ रही थी। अहा! इतना पानी! देखते ही सोनू की आँखें फैल गईं। एक साथ इतना पानी उसने पहले नहीं देखा था। आसपास बच्चे बालू के घर बना रहे थे।

''जाओ! तुम लोग भी बनाओ। देखो, कितने अच्छे घर हैं।'' ममा ने कहा। दोनों बच्चे अलग-अलग घर बनाने लगे।

थोड़ी देर बाद सोनू ने देखा रहीमन का घर तैयार था। बड़ा प्यारा घर था। महराबों, खिड़कियों, गुंबद वाला घर। उसकी अपनी तो दीवारें भी नहीं उठी थी। ममा ने आकर देखा।

''वाह! रहीमन, कितना अच्छा घर बनाया है तूने।'' ममा ने तारीफ़ की।

सोनू का घर वैसा का वैसा धरा था।

एक तो हमारे पास से पैसा लेती है। दूसरे मेरी ममा की तारीफ़ भी पाती है। सोनू का गुस्सा उबल पड़ा।

वह उठा। दौड़कर रहीमन के घर पर पैर रखा और वहीं खड़ा रहा। रहीमन बुक्का मारकर रो दी, ''तोड़ दिया मेरा घर रे . . .''

सोनू को और गुस्सा आया। तैश में आकर वह उस गिरे हुए घर पर कूदने लगा। ''ले! ले! देख, तेरा घर खतम!'' बालू का घर ढह गया।

रहीमन रोती-रोती सोनू से लड़ती गई। धक्का-मुक्की, लात, घूँसे, दोनों ने एक दूसरे को खूब मारे। ममा बीच-बचाव करने आई पर दोनों में से एक ने भी उनकी न सुनी।

एक दूसरे को नोंच-खसोट कर जब दोनों बच्चे कुछ शांत हुए तो ममा ने चुपके से दोनों की बाँहें पकड़ी और दोनों को घर ले आई। सोनू को सीढ़ियाँ चढ़ाकर वह रहीमन को अपने घर छोड़ आईं।

उस रात ममा ने सोनू से बात तक नहीं की। खाना नहीं दिया, न खुद खाया।

दूसरे दिन जब सोनू ने देखा कि ममा आज भी कुछ नहीं बोल रही है तो वह बड़बड़ाने लगा, "एक तो हमारे पैसे लेते हैं, दूसरे ममा तारीफ़ भी उसी की करती है। मुझे खाने को नहीं दिया। मुझसे ममा बोलती भी नहीं है।"

उसे बहुत ज़ोर से रोना आ रहा था लेकिन वह रोया नहीं। रोना दबाने से उसका गला दुखने लगा। पर वह चुपचाप बैठा रहा।

दफ़्तर जाते समय ममा उसके पास आई। "मैं जाकर बाई से कह आती हूँ कि आगे से रहीमन को यहाँ न भेजा करे। तुम उसके बेस्ट फ्रेंड नहीं, पक्के दुश्मन हो।"

ममा की कड़ी आवाज़ सुनकर सोनू रो दिया। ममा ने पास आकर उसे पुचकारा। "सोनू! तुमने ऐसी जंगली हरकत क्यों की? ऐसा क्या किया था रहीमन ने?"

अब सोनू से रहा नहीं गया। वह चीख कर बोला "मैं उसे अपना बेस्ट फ्रेंड समझता था। पर वह सिर्फ़ मतलब के लिए यहाँ आती थी। मेरे लिए नहीं। पैसों के लिए।"

"यह सच नहीं है।"

"सच है। आप ही ने दिए थे पैसे।"

''एक काम करो, सोनू। आज तुम जाकर रहीमन का घर देख आओ। मैं दफ़्तर नहीं जाती। चलो मैं तुम्हें उसका घर दिखाती हूँ। पहले मुँह हाथ धो लो।''

सोनू की समझ में तो नहीं आया पर ममा की ऐसी आवाज़ सुनने के बाद उसकी हिम्मत नहीं पड़ी कुछ कहने की। अच्छे बच्चों की तरह हाथ मुँह धो वह ममा के साथ चल दिया।

उनके घर के परले सिरे के गली में एक बस्ती थी। बदबूदार। जगह-जगह कूड़ा पड़ा हुआ। आसपास कौए, मरियल कुत्ते और मोटीताजी बिल्लियाँ कचरे में मुँह मारती हुईं। पानी के नल के पास तीस-चालीस औरतों का जमघट।

एक झोंपड़ी के पास जाकर ममा रुकी। ''रहीमन की अम्मा,'' उन्होंने आवाज़ लगाई। बाई बाहर आई और मालकिन को देखकर चकित रह गई।

''रहीमन कहाँ है?'' ममा ने पूछा, और घर के अंदर प्रवेश किया।

घर में इतना अँधेरा था कि कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। कोने में चूल्हे के पास से एक आकृति उठ खड़ी हुई। फटे-पुराने कपड़ों में लिपटी रहीमन उनके सामने खड़ी थी। रोने से, या धुँए से, उसकी आँखे लाल थी।

''रहीमन! सोनू तुमसे माफ़ी माँगने आया है।''

''नहीं नहीं। इसकी क्या ज़रूरत है?'' बाई ने बीच-बचाव किया। ''बच्चे तो लड़ते-भिड़ते रहते हैं।''

''प्यार की लड़ाई किसे बुरी लगती है, रहीमन की अम्मा? गुस्से की, नफ़रत की लड़ाई नहीं होनी चाहिए। कल से सोनू के स्कूल शुरू होंगे। कल ही से रहीमन भी स्कूल जाएगी न?''

''हाँ मेमसाहब। आपने जो पैसे दिए हैं उससे रहीमन के लिए यूनिफार्म बनवाने को दिया है।''

सोनू ने ममा की तरफ़ देखा।

ममा ने हँसकर रहीमन की तरफ़ इशारा किया। सोनू रहीमन के पास गया। उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, ''माफ़ कर दो! सॉरी, बेस्ट फ्रेन्ड!''

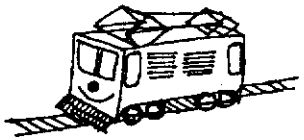

ऋषभ का राम

गीता हरिहरन

ऋषभ ने खुशी-खुशी दरवाज़ा ढकेला और घर के अंदर दौड़ आया। उसका बस्ता उसकी पीठ पर से उछल कर गोया अपने आप ही जा कर दीवार की कील पर टिक गया।

"पहली बार!" ऋषभ चिल्लाया। महीने-भर से उसकी यही कोशिश रही थी कि बस्ता ऐसे परिंदे जैसे उड़ कर दीवार तक आप ही पहुँच जाए।

"क्या तुम आ गए, ऋषभ?" उसकी दादी ने रसोई से निकलते हुए पूछा। ऋषभ मन ही मन मुस्कुराया। दादी का तो यह रोज़ का तकिया-कलाम था। आखिर उसके दौड़ती पैरों की आहट से, बस्ते को फैंकने की चपत से, क्या दादी को पता नहीं चलता था कि ऋषभ ही तो है? लेकिन हर रोज़ दोपहर का समय इसी सवाल से शुरू होता।

खाने के बाद, जब दादी ने बरतन माँझ दिए थे, दोनों साथ लेट गए। कभी-कभी ऋषभ सोचता कि दिनभर में कौन सा समय उसे सब से अच्छा लगता था। सुबह-सुबह जब दादी बाहर फूल चुनते हुए कोई गीत गुनगुना रही होती, तो उसे बहुत प्यारा लगता। लेकिन शाम को जब अम्मा घर आतीं तो कितनी रौनक हो जाती थी! और अप्पा के तो घर आने पर पूछो मत।

फिर भी ऋषभ ने तय कर लिया था कि सब से शान्ति का समय तो वही है — दोपहर को जब वह दादी से चिपक कर लेटता, और खिड़की से धूप खामोश कमरे में बह कर आती। कभी-कभी दादी कहानियाँ सुनातीं। दादी की कहानियाँ और कहानियों से अलग होतीं। ये न स्कूल में सुनने को

मिलतीं, न किताबों में पढ़ने को।

दादी गाना भी सुनातीं। बेहिसाब गाने आते थे दादी को। उनकी आवाज़ धीमी थी, कुछ काँपती हुई। हर गाने के वे एक-एक शब्द का मतलब बता सकती थीं। ऋषभ समझ गया था कि दादी के लिए ये गाने कुछ गहरा अर्थ रखते हैं, उनके लिए वे बहुत ही प्यारे हैं।

कभी-कभी दादी कहानी वाले गीत गातीं, महाभारत या रामायण से। एक दिन गाते-गाते दादी ने ऋषभ से कहा, "भगवान राम को करुणा का समुद्र कहते हैं। तुम्हें पता है इसका मतलब?"

ऋषभ ने सिर हिलाकर इनकार किया। दादी ने समझाया, "करुणा का मतलब है दया। जब हम किसी को देखते हैं जिसे हमारी प्रेम, हमारी उदारता की ज़रूरत हो, जो नरम भावना हम में उमड़ आती है — वही। और तुम तो जानते हो समुद्र कितना गहरा होता है। इसका मतलब हुआ कि हर प्राणी के प्रति राम की करुणा और कृपा का कोई अंत नहीं है।"

एक दिन ऋषभ कुछ देर से घर पहुँचा। दादी दरवाज़े पर उसका इंतज़ार कर रहीं थीं। ऋषभ अपनी बात बोलने को इतना बेताब था कि बस्ते को उछालना तक भूल गया। "पाटी!" ऋषभ ने दादी के सवाल को काट दिया। "पता है रास्ते पर क्या देखा? इतना बड़ा जुलूस!"

"अच्छा? कौन-सा जुलूस?" दादी ने कंधे से बस्ता लेते हुए पूछा।

"पता है, एक विशाल राम था, तीर-धनुष के साथ। कार्डबोर्ड का बना हुआ। और बहुत सारे लोग लॉरी पर लाउडस्पीकर से बोल रहे थे, 'जय श्री राम! हमारी मदद करें, शत्रु पराजित करें!' "

ऋषभ जुलूस की याद में खोया था। कितनी भीड़ थी, कैसी रंगत, कितनी गड़बड़! ऐसा लगा जैसे कहीं कोई सेना कुछ करने जा रही हो। उसके ध्यान में नहीं आया कि दादी तो कुछ बोल ही नहीं रहीं . . .

"और जब जुलूस रास्ते से गुज़र गया, तो मैं बाज़ार तक उसके

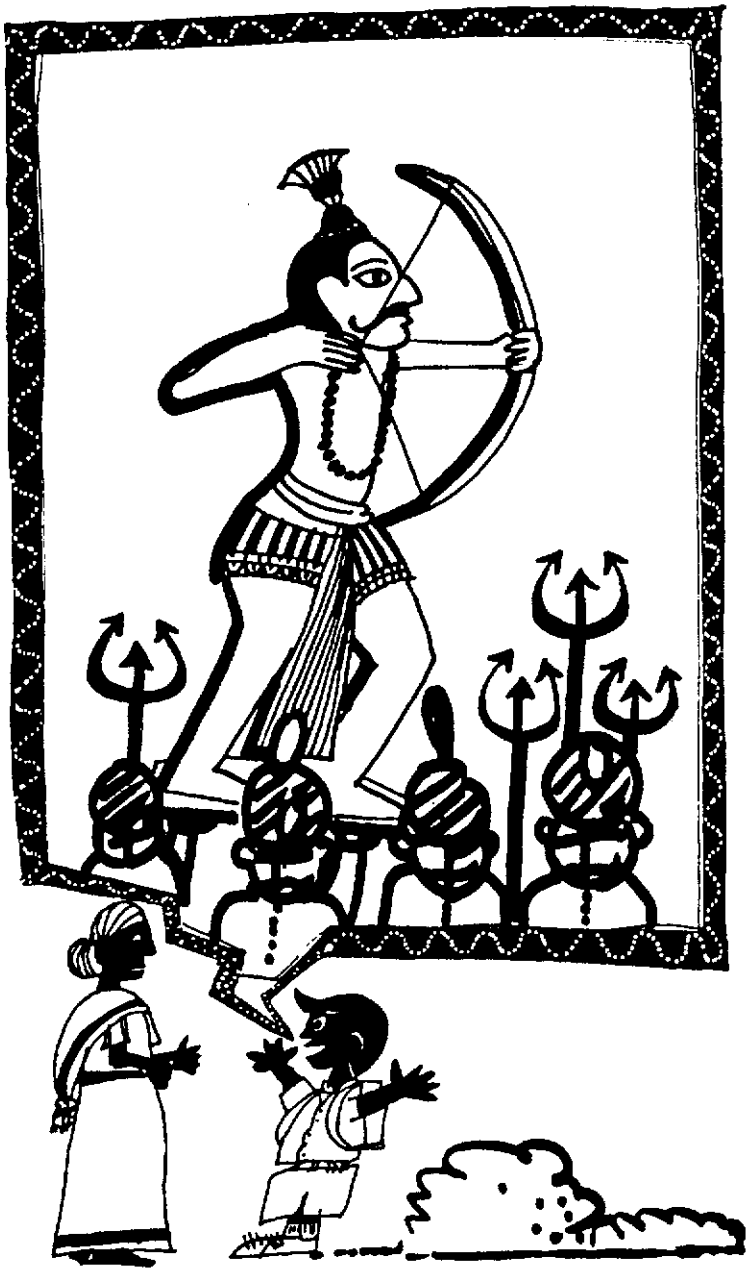

पीछे-पीछे भागा। देखो, एक आदमी ने मुझे कुमकुम दिया। उसके हाथ में त्रिशूल था।''

लेकिन दादी ने कुमकुम की ओर देखा तक नहीं। वह बोलीं, ''रहने दो। खाना खाने आ जाओ।'' ऋषभ इतना उत्तेजित हो गया था कि उसको अपनी भूख का भी ध्यान नहीं रहा था।

खाने के बाद दोनों साथ-साथ लेटे थे, तो दादी ने कहा, ''ऋषभ, जब राम, सीता और लक्ष्मण वन में थे, तो एक दिन उनको एक हिरन दिखा। उसकी बहुत ही सुंदर पूँछ थी। सीता को वह पूँछ इतनी पसंद आई कि वह सोचने लगी, काश मैं ऐसी ही पूँछ वापस घर ले जा सकती, वनवास की याद में। और राम ने ठान ली कि वे उस हिरन की पूँछ सीता को अवश्य लाकर देंगे।

''लेकिन अचानक हिरन ने राम की ओर मुड़ कर देखा। अब राम को उसकी पूँछ नहीं दिखी, केवल उसकी मृदु, आस्था भरी आँखें और कोमल सा गर्दन। हिरन ने इस तरह अपनी गर्दन बढ़ाई थी मानो वह पूँछ की जगह गर्दन की बलि देना चाह रहा हो।

''राम का हृदय करुणा से भर आया। सीता को वह पूँछ तो नहीं मिली। लेकिन जैसे राम, सीता और लक्ष्मण अपनी कुटिया की ओर चलने लगे, उनके चेहरों पर एक अद्‌भुत भाव था — क्योंकि उन्होंने दो प्राणियों के बीच प्यार और आस्था का चमत्कार देखा था।''

दादी ने ऋषभ के बालों पर हाथ फेरा। ''मैं जानती हूँ उस वक्त राम का चेहरा कैसे दिखा होगा,'' उन्होंने कहा। ''पर उसे देखने के लिए कार्डबोर्ड की ज़रूरत नहीं है।'' ऋषभ ने कुछ अनमने से दादी को देखा।

''कल मैंने जो गाना गाया था, तुम्हें याद है?'' दादी बोली।

''हाँ।'' ऋषभ की समझ में अभी भी कुछ नहीं आ रहा था। ''तुमने उसको प्रेम भक्ति का नाम दिया था।''

"और तुम्हें याद है कि इसका अर्थ क्या होता है?"

"ऐसी प्रार्थना जिसमें प्यार ही प्यार हो।"

ऋषभ ने वह गाना फिर याद किया। उसकी आँखों के सामने एक शांत, उदार चेहरा आया — जैसे राम का, जब उन्होंने हिरन को देखा था। दादी के गाने सुनने पर ऋषभ के मन में हमेशा वही चेहरा आता।

"लेकिन पाटी, यह चेहरा तो कार्डबोर्ड के चेहरे से अलग है। तो क्या फिर दो अलग-अलग राम हैं?"

"अभी सो जाओ," दादी धीमे से बोलीं। "राम तुम्हारे हृदय में रहता है, न कार्डबोर्ड में न किसी इमारत में। और प्रार्थना के लिए — या भक्ति-गीत के लिए — कोई लाउडस्पीकर की ज़रूरत नहीं होती।"

और फिर वे सो गए, साथ-साथ, जैसे कि उस दिन दोनों ने कोई लम्बी यात्रा तय की हो।

अनुवाद सी. डी. तिवारी, शमा फ़तेहअली

गुड़िया

सावन दत्ता

निराश होकर तेजिन्दर सिंह ने अपने बटुए की तरफ़ देखा। मूँगफली के ढेर के एक कोने में पड़े उस बटुए में सिर्फ़ तीन सिक्के थे जो माँ ने दोपहर के खाने के लिए दिए थे। बाकी दिन इस समय तक बटुआ आधा भर चुका होता। लेकिन आज सुबह से कोई भी उसके ठेले से मूँगफली खरीदने नहीं आया था — एक कूली तक नहीं। घर पर माँ अकेली बैठकर इंतज़ार कर रहीं होंगी, तेज ने मन ही मन सोचा। उन्हें जाकर कैसे बताऊँगा कि आज एक रुपया भी नहीं कमा सका?

आज स्टेशन बिल्कुल चुपचाप था — न कोई भीड़, न शोर-हंगामा। चायवालों की पुकार भी नहीं। उनके बिना यह तो स्टेशन ही नहीं लग रहा था। वजह क्या हो सकती है इसकी, तेज हैरान होकर सोचने लगा। कहीं इसका सम्बंध प्रधानमंत्री वाली घटना से तो नहीं? कल दोपहर को जब वह अपने ठेले के साथ प्लेट्फॉर्म पर खड़ा था, तो लाउडस्पीकर से ट्रेन की सूचनाएँ अचानक रुक गईं थीं। एक गंभीर आवाज़ ने घोषणा की कि प्रधानमंत्रि की हत्या कर दी गई है। उनके अंगरक्षकों ने उन पर गोलियाँ चलाईं और उनका तुरंत देहांत हो गया।

यह सुनते ही प्लेटफ़ॉर्म पर खलबली मच गई। सभी दुकान बंद हो गए और यह देखकर तेज भी घर चला गया।

आज सुबह चार बजे जब वह ठेला लेकर घर से चला था, उसने सड़कों पर जगह-जगह लोगों की भीड़ देखी थी। स्टेशन के बाहर भी कुछ

कूली झुंड बनाकर खड़े थे। उसका दोस्त किशन भी वहीं था। तेजिन्दर ने मुस्कराकर हाथ हिलाया तो था, लेकिन किशन रोज़ जैसे मूँगफली खाने दौड़ नहीं आया। दूर से उसने मुझे पहचाना नहीं, तेजिन्दर ने सोचा, या फिर कोई ज़रूरी बात कर रहा होगा।

अब अचानक उसे कुछ आदमी आते दिखाई पड़े। शायद उनमें से कोई मूँगफली खरीद लें। तेज मूँगफली के ढेरों को समेटने लगा। लेकिन यह क्या? वे उसे देखकर रुक क्यों गए? इस तरह वे उसे घूर क्यों रहे थे?

"भागो, बेटा। जल्दी भागो," किसी ने चिल्लाया। तेज ने देखा कि ओवरब्रिज पर खड़ा कोई उसे इशारा कर रहा था। और तभी उसने गौर किया कि उन आदमियों के हाथों में डंडे थे। और वे धीरे-धीरे उसी की ओर बढ़ रहे थे।

तेजिन्दर ने अपना बटुआ उठाया और भागा। पीछे से उन आदमियों के चिल्लाने और भागने की आवाज़ आई। वह और तेज़ दौड़ा।

तभी उसने आगे देखा तो एक आदमी ने डंडा लेकर प्लेटफ़ॉर्म से निकलने का रास्ता रोक रखा था। तेजिन्दर डर से काँपने लगा। अब क्या करे? एक छोटा, छुपा सा गेट से वह रेलवे यार्ड की तरफ़ निकल गया।

यार्ड में बहुत सारी रेलगाड़ियाँ खड़ीं थीं। उनके डिब्बों के बीच छुपता हुआ वह एक मालगाड़ी तक पहुँचा ही था कि उसे पीछे से उन लोगों के चिल्लाने की आवाज़ें आने लगीं। सामने वाले डिब्बे का दरवाज़ा खुला देखकर वह झट अंदर कूदा।

डिब्बे के अंदर चारों तरफ़ भूसा ही भूसा था। और अँधेरा इतना कि कुछ भी नज़र नहीं आ रहा था। तेज ने अन्दाज़ा लगाया कि यह ज़रूर गाय-भैसों का डिब्बा होगा। इतनी गंदी बदबू और कहाँ से आ सकती है?

बाहर से उन लोगों की चीख-पुकार आ रहीं थीं। "अरे, कहाँ गया वह लड़का?" एक ने कहा। "यहीं कहीं होगा। बचकर कहाँ जाएगा," दूसरे

ने जवाब दिया। तेज को कुछ समझ में नहीं आ रहा था। "ये लोग मुझे क्यों ढूँढ़ रहे हैं? मैंने तो उनका कुछ नहीं बिगाड़ा!"

तभी डिब्बे का दरवाज़ा खुला और एक आदमी अंदर आया। तेज चुपचाप बैठे वाहे गुरु का नाम जपने लगा। आदमी ने जेब से माचिस निकाला और एक तिल्ली जलाई। अब मैं गया, तेज सोचा — पर इतने में पीछे से एक भैंस का ज़ोर रँभण सुनाई दी। तेज चौंक उठा। उसे नहीं मालूम था कि डिब्बे में उसके अलावा भी कोई था। आदमी ने भी घबराकर तिल्ली बुझा दी और चला गया।

भूख और थकावट के मारे कमज़ोर, अँधेरे डिब्बे में बैठे-बैठे तेज को पता ही नहीं चला कि कितने घंटे गुज़र गए। काश वह अभी घर पर होता। माँ गरम-गरम पकोड़े बना कर लातीं। आखिर अपनी जगह से उठकर उसने चुपके से बाहर झाँका। आसपास कोई नहीं था। वह डिब्बे से कूद निकला।

रात हो चुकी थी . . . लेकिन स्टेशन की दीवार के पीछे आकाश इतना लाल क्यों था? वहाँ से धुँआ भी निकल रहा था। इतना सारा धुँआ! कोई बहुत बड़ी चीज़ जल रही होगी। पर दीवार के पीछे तो टैक्सी स्टैंड है, तेज को अचानक याद आया। और पड़ोसी का बेटा, सतनाम, वहीं तो ड्यूटी करता है! तेजिन्दर के मन में अजीब डरावनी तस्वीरें बन रहीं थीं। दोपहर को उन आदमियों का उसका पीछा करना। और अब यह आग! कहीं कुछ बहुत गड़बड़ थी! उसे जल्दी घर जाना चाहिए।

प्लेटफ़ॉर्म वाले गेट से बाहर जाने की तेज को हिम्मत नहीं हुई। स्टेशन की दीवार के एक टूटे हिस्से में से वह रास्ते पर निकल आया। वहाँ जो देखा, एक भयानक सपना जैसा था। जगह-जगह पर जलते हुए ढेर — लोहे-स्टील के टुकड़ों और चमड़े की सीटों की। काँच के चूर और चप्पलों से सड़क ढकी पड़ी थी।

वह सीधे अपने घर की ओर भागा। यह ज़रूर कोई भयानक सपना है, अपने आप को समझाने लगा। बस, थोड़ी देर में मैं जाग जाऊँगा तो सब कुछ पहले जैसा ही रहेगा। रास्ते में उसने न कुछ देखा, न ही उसे चीख-शोर सुनाई दी। अपना बटुआ हाथ में जकड़कर तेज़ी से भागता चला गया। उसे घर पहुँचना था — बस।

आखिर उसे इमली का पेड़ नज़र आया। वही, जिसकी छाँव में उसका छोटा-सा घर था। माँ बेसब्री से उसका इंतज़ार कर रहीं होंगी। चैन की साँस लेते हुए तेज उस पेड़ की ओर भागा।

पास पहुँचकर वह चौंककर रुक गया। अरे! यह कोई दूसरा इमली का पेड़ था क्या? यहाँ तो कोई भी घर नहीं था। कहीं जल्दबाज़ी में वह गलत जगह तो नहीं आ गया? वह वापस मुड़ने ही वाला था कि उसकी नज़र गली के उस पार वाला हैंड-पम्प पर पड़ी। अरे, यह तो हमारा ही हैंड-पम्प है, उसने आश्चर्य से देखा। इसका हैंडल भी हमारे वाले की तरह टूटा हुआ है!

तेजिन्दर के हाथ-पाँव ठंडे पड़ गए। उसने पीछे मुड़ कर ध्यान से उस ओर देखा जहाँ उसका घर होना चाहिए था। अँधेरे में अब उसे धुँआ दिखाई दिया। जले हुए राख के ढेर से उठता हुआ धुँआ। नींद में जैसे चल रहा हो, तेजिन्दर उस ढेर के पास पहुँचा। राख के बीच में कुछ चमक रही थी। झुककर तेज ने उसे उठाया और अपने बनियान से राख को साफ़ किया। एक चूड़ी थी। उसी ने माँ को दी थी। अपने दोपहर के खाने के पैसों में से एक-एक पैसा बचाकर खरीदी थी उसने यही चूड़ी।

एक घंटा, दो घंटे, न जाने कितने घंटे बीत गए, लेकिन तेज वहीं खड़ा रहा, पत्थर की मूर्ति की तरह। उसे सब कुछ सुन्न-सा लग रहा था। न डर का अहसास था और न दुःख का। वहीं खड़े-खड़े पूरी रात बीत गई।

मुर्गे के बाँग से वह चौंक उठा। उसमें फिर से जान आई। सूर्य की

पहली किरणों से आकाश लाल हो रहा था। चिड़ियों का चहचहाना हवा में गूँज रही थी। एक नया दिन शुरू हो रहा था। और तेज को अब अहसास हुआ कि उसकी माँ कभी लौटकर नहीं आएगी।

वहीं सड़क पर बैठकर वह फूट-फूटकर रोने लगा। माँ की चूड़ी और बटुआ, दोनों उसके हाथ से कब गिर गए उसे पता भी नहीं चला।

"भैया, तुम क्यों रो रहे हो?" एक नन्ही-सी आवाज़ आई और किसी ने उसके कंधे पर एक छोटा-सा हाथ रखा। मुड़कर तेज ने देखा, पड़ोस की दुकान वाले सेठजी की बेटी, गुड्डी, खड़ी थी। तेज इतनी छोटी लड़की के सामने रोना नहीं चाहता था, लेकिन उसके आँसू बंद नहीं हो रहे थे।

तभी उसकी गोद में गुड्डी ने कुछ रखा और कहा, "जब मेरी माँ भगवान के पास चली गईं थीं, तो पिताजी ने मुझे यह गुड़िया दी थी। उन्होंने कहा था कि अब यही मेरी देखभाल करेगी। भैया, यह गुड़िया तुम रख लो।"

तेज के आँसुओं से गुड़िया के कपड़े भींग रहे थे। "अरे बेटा, यहाँ बैठे-बैठे रो क्यों रहे हो?" उसके सामने सेठजी खड़े थे। "चलो, अंदर चलो। मैंने तुम्हारे और गुड्डी के लिए दूध गरम किया है। दूध पीकर तुम्हें आज से मेरे साथ दुकान में हाथ बँटाना है। अब चलो, अंदर जाकर जल्दी से दूध पी लो।"

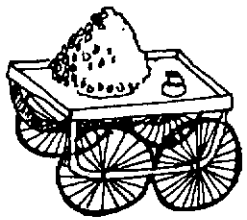

मूर्ख और महामूर्ख

शमा फ़तेहअली

यदि आप १९६५ में एक दिन अलीबाग के आसपास खेतों में सैर कर रहे होते, तो शायद एक अजीबोगरीब दृश्य देखने को मिलता। एक दुबले-पतले बुज़ुर्ग, चश्मा पहने और छोटी सफ़ेद दाढ़ी रखे हुए, बिल्कुल फ़ौजी की तरह खेतों में परेड कर रहे थे। ये थे सालिम मामूँ, और उनके पीछे चलीं थीं बच्चों की एक छोटी सी फ़ौज। थोड़ी-थोड़ी देर में सालिम मामूँ एक बड़ी दूरबीन आँखों से लगाते और किसी जनरल की तरह चारों तरफ़ देखते। अपने शरीर के हिसाब से उनके दूरबीन और पतलून दोनों कुछ ज़्यादा ही बड़ी थीं — और ऊपर से कमीज़ छोटी! खैर। ठप, ठप, ठप, वे चले।

सालिम मामू के पीछे अनिल और हरीश और अहमद और शीला और किरण और रवि, सभी सत्यनिष्ठा से चले — ऐसे गंभीर, जैसे कि वे दुनिया का सबसे महत्वपूर्ण काम कर रहे हैं। जब तब वे झाड़ियों के पीछे लपकते, या अचानक पलट कर, दूरबीन आँखों से सटा, इधर-उधर देखने लगते।

तभी पास की एक झाड़ी में फड़फड़ाहट हुई, और सब बच्चे एक साथ चीखने लगे। "दुमरी!" अनिल चिल्लाया। "चिलचिल!" शीला चिल्लाई। और हरीश चिल्लाया, "बैबलर!"

"बुद्धू! कभी बैबलर नहीं देखा है क्या?"

"कौन बुद्धू? तुम्हें तो लगता है कि कोई भी अंग्रेज़ी नाम हिन्दी नाम से बेहतर ही होता है!"

"बेवकूफ़ मूर्ख!"

''महागधा, महाबुद्धू, महामूर्ख!''

फिर जम के 'फ़ाईट सीन' शुरू हो गया। सालिम मामूँ और बाकी बच्चे बड़े मज़े से देखते रहे — कभी खिलखिलाते, कभी आपस में आँख मारते, जैसे कुछ कहने को बेताब हों।

आखिरकार लड़ाई खत्म हुई। अनिल ने धूल में से खुद को उठाया, हरीश ने बबूल की झाड़ी से अपनी टोपी ली। अब किरण और रुक न सकी। ''अच्छा, तो अनिल बेवकूफ़ मूर्ख है ना?'' वह हरीश से बोली। ''और तुम? दुमरी, चिलचिल और बैबलर में फ़र्क ही क्या है भला?''

''एक ही हैं, सब तो एक ही हैं!'' नन्हा सा अहमद चिल्लाया। जैसे क्लास में हाथ उठाते हैं वैसे ही उसने उठा रखा था। ''मुझे पता है सब एक ही चीज़ हैं। किताब में लिखा है।''

''अहा!'' रवि ने छेड़ते हुए कहा। ''लेकिन मुर्ख और महामूर्ख, ये भी एक समान हैं क्या?''

''अच्छा, कोई बात नहीं,'' नरम दिल वाली शीला बोली, क्योंकि हरीश और अनिल कुछ शर्मिन्दा दिख रहे थे। ''आखिर इस बहस में बात तो सभी की ठीक थी। झगड़ा केवल अलग-अलग नामों को लेकर था।''

''मेरी प्यारी बिटिया,'' अचानक गंभीर आवाज़ में सालिम मामूँ बोले, ''ज़्यादातर झगड़े तो नाम को लेकर ही होते हैं।''

सारे झगड़े सिर्फ़ नाम को लेकर? बच्चे इस पहेली को सुलझा ही रहे थे कि रवि चिल्लाकर आकाश में एक छोटे से बिंदु की ओर इशारा किया।

''देखो तो! एक गिद्ध! चील या गिद्ध ही लगती है।''

लेकिन कुछ पास आने पर लगा कि यह शायद पक्षी है ही नहीं। और भनभनाने की आवाज़ जब आई तो गिद्ध झट से प्लेन में बदल गया। बच्चे एकटक देखते रहे।

''सालिम मामूँ,'' — अहमद की आँख खुली की खुली रह गईं थीं —

''क्या यह बॉम्बर-प्लेन हो सकता है?''

''हो सकता है,'' सालिम मामूँ ने कहा। ''बिल्कुल हो सकता है पाकिस्तानी बॉम्बर। बच्चे, नीचे दुबक जाओ। आखिर यह जंग का समय है, हम बिना मतलब क्यों खतरा उठाएँ?''

बच्चे चुपचाप झाड़ियों के नीचे दुबक गए। जब प्लेन की आवाज़ दूर चली गई तो रवि ने बहुत सावधानी से अपना सिर उठाया।

''सालिम मामूँ,'' उसने ज़ोर से फुसफुसाया। ''पाकिस्तान के साथ यह जो लड़ाई है, यह भी क्या केवल नाम को लेकर लड़ाई है?''

सब बच्चे हँस पड़े। लेकिन सालिम मामूँ के चेहरे से लगा जैसे एक नई बात उनके ज़हन में आई हो। अंत में वे बोले, ''दरअसल, देखा जाए तो यही है। शुरू से ही, पाकिस्तान के साथ जो लड़ाई रही है, सिर्फ़ नामों को ही लेकर एक नासमझ लड़ाई है।''

''बेवकूफ़!'' अनिल बोला। ''उन्हीं के कारण पापा को जा कर लड़ना पड़ा।''

''मूर्ख और महामूर्ख,'' किरण बोली।

''ओए! रुको वहीं सब! तुम लोग हो कौन? यह दूरबीन लेकर घूमने की इजाज़त किसने दी, हैं?''

चीं-ईं-ईं-ईं! ज़ोरों से ब्रेक लगाकर एक पुलिस की गाड़ी पास आकर रुक गई। उसमें एक पुलिस ड्राइवर था और उसके साथ लम्बा-चौड़ा, तुंदैला, पसीने से लथपथ, हाथ में लाठी लिए, एक पुलिस। वह सालिम मामूँ के सामने आ खड़ा हुआ। अहमद धीरे से शीला के पास सरक आया।

''दूरबीन ले कर चले, हैं? और बच्चों को भी सिखाया जा रहा है। तुम लोगों को पता नहीं कि जंग का समय है?''

''जी हाँ, मालूम तो . . .'' सालीम मामूँ बताने लगे।

''तो फिर? हमें कैसे पता कि तुम जासूस नहीं? हैं? और बच्चों को

भी जासूसी सिखा रहे हो? हैं? नाम क्या है तुम्हारा?''

''उनका नाम है सिली-मौली मामूँ,'' अहमद की मुँह से फूट पड़ा। वह पुलिस को गोल-गोल आँखों से देख रहा था। उसने सोचा कि पुलिस कुछ टीचर जैसा ही होगा – इसलिए जितनी जल्दी जवाब दें उतनी ही जल्दी परेशानी से बच निकलेंगे। पर शीला ने धीमे से उसे टोका। ''चुप, पागल! *असली* नाम बताना है।''

''क्या?'' अहमद बोला। ''तो क्या यह असली नाम *नहीं* है?''

फिर सालिम मामूँ ने पुलिस से कहा, ''मेरा नाम है अली।''

''हैं? साफ़ पाकिस्तानी नाम! साफ़! क्या बोला मैं? दूरबीन से जासूसी! बच्चों को भी सिखाना! चलो मेरे साथ सीधे पुलिस-स्टेशन!''

बच्चे यह सब सुन कर दंग रह गए। रवि, हरीश और अनिल साहस दिखाने की कोशिश कर रहे थे लेकिन उनके चेहरे पीले पड़ गए। अहमद रोने लगा और शीला ने उसको समझाया, ''कुछ नहीं होगा, अहमद! चुप हो जाओ!''

''जेल में जा कर मार पड़ेगी!'' अहमद रोया।

''इतना शोर मत करो!'' पुलिस बोला। उसने जेब से एक नोटबुक निकाली। ''अली। कैसा अली?''

सालिम मामूँ अपने पूरे पाँच फुट दो इंच के कद को तन कर खड़े हो गए। ''मेरा नाम है डॉ. सालिम अली।''

पुलिस लिखने लगा। ''डाक्टर . . . हैं? क्या? लेकिन वे तो 'बर्ड मैन ऑफ़ इन्डिया' हैं!''

एक छोटी सी नाराज़ गौरैया जैसे दिखते हुए, सालिम मामूँ ने तीखे स्वर में कहा, ''जी हाँ। क्या अब भी सोचते हो कि मैं जासूस हूँ?''

''डाक्टर सालिम अली!'' उसने नोटबुक गिरा दी। फिर सालिम मामूँ की तरफ़ लपका। ''सालिम साहब! प्लीज़! एक चिड़िया है। मुझे हर जगह

दिखाई देती है। उसका नाम जानना है। करीब-करीब इतनी बड़ी। लम्बे पाँव और लम्बी चोंच। उसका नाम पूछते-पूछते मैं तो परेशान हो गया!''

''उसके चोंच के ऊपर एक लाल धब्बा है क्या?''

''हाँ, हाँ, *वही*!'' पुलिस उछल पड़ा। ''मैं कहता हूँ, सब जगह वही चिड़िया दिखती है। पुछते-पुछते परेशान . . .''

''क्या उसका गाना ऐसा है — डिड्-*यू*-डू-इट?'' अब तो पुलिस फूला न समाया।

''डिड्-*यू*-डू-इट? डिड्-*यू*-डू-इट? बिल्कुल वही! . . . जहाँ जाता हूँ वही गाना! . . .''

''इसी लिए,'' — अब हरीश की आवाज़ खुली — ''उसे डिड्-यू-डू-इट चिड़िया कहते हैं।''

''या टिटहरी,'' किरण बोली।

''या फिर ज़र्दी,'' बोला अनिल।

''या रेड-वॉटल्ड लैपविंग,'' शीला ने कहा।

''जी हाँ!'' रवि बोला। ''लेकिन सिर्फ़ महामूर्ख ही उसे इस नाम से पुकारते हैं!'' और शुरू हो गया एक मज़ेदार 'फ़ाईट-सीन' . . .

अनुवाद सी. डी. तिवारी, शमा फ़तेहअली